बुधस्वामी कृत बृहत्कथाश्लोकसङ्ग्रह का आलोचनात्मक अध्ययन

डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोधप्रबन्ध
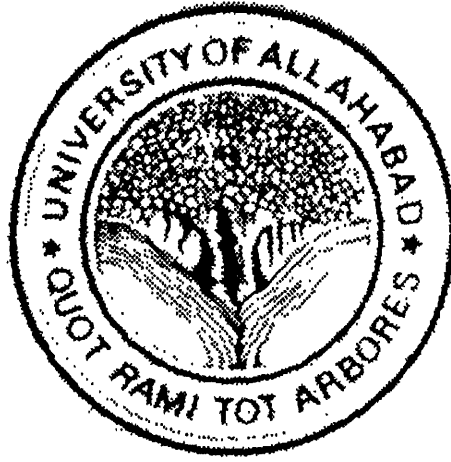
शोधच्छात्रा

अमितातिवारी

शोधनिर्देशक

डॉ०श्रीरुद्रकान्तमिश्र

संस्कृतविभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

2001

प्राक्कथन

प्राक्कथन

जगत् में प्रत्येक कार्य की फलश्रुति में अथ से लेकर इति तक के अपने इतिवृत्त का उल्लेख अवश्य हुआ करता है। यह शोध कार्य भी इस तथ्य का अपवाद नहीं है।

संसार में मानव की अभिव्यक्ति के रूप में बहुत सी भाषायें प्रचलित हैं परन्तु देववाणी संस्कृत की तो कोई समता ही नहीं है। संस्कृत भाषा में विशेष अभिरूचि होने के कारण ही मैंने साहित्य वर्ग में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की तदनन्तर मेरी रूचि शोधकार्य की तरफ उन्मुख हुई।

आज मैं अवध विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष गुरूवर श्री शारदा प्रसाद जी को सादर स्मरण करती हूँ जिन्होंने स्नातक स्तर पर संस्कृत विषय के अध्ययन में मेरा अभूतपूर्व मार्गदर्शन किया जिसका प्रतिफल यह शोधकार्य है। अतएव मैं आजीवन उनकी ऋणी रहूँगी।

यह शोध प्रबन्ध डा० श्रीरूद्रकान्त मिश्र जी (संस्कृत विभाग) के विद्वन्तापूर्ण एवं गवेषणात्मक निर्देशन में सम्पन्न हुआ। इस शोध प्रबन्ध का विषय बुधस्वामी कृत **'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' का समालोचनात्मक अध्ययन"** है। बुधस्वामी कृत इस महाकाव्य का समय 9वीं शती है। इस ग्रन्थ का एकमात्र आधार गुणाढ्य कृत **'बृहत्कथा'** है। मूल ग्रन्थ **'बृहत्कथा'** तो आज इस साहित्य जगत् में अनुपलब्ध है। गुणाढ्य कृत मूल ग्रन्थ पैशाची भाषा में निबद्ध था। यह ग्रन्थ प्राचीनतर है। **"बृहत्कथा"** अत्यन्त अद्भुत यात्रा विवरणों तथा प्रणय प्रसङ्.गों का विशाल समुद्र है जिसकी एक-एक बूंद से अन्य कितनी ही विचित्र कथाओं की रचना हुई। **"बृहत्कथा"** के अमर रचयिता गुणाढ्य सातवाहन राज्य के दरबारसे सम्बद्ध कवि थे, जिनका समय प्रथम-द्वितीय ईस्वी था। वह युग स्थलयात्री सार्थवाहों का था तथा समुद्री यात्री के प्रवहण सरपट छूटते थे और ये लोग भारत की चहारदीवारी में उत्तर से दक्षिण तथा

पूरब से पश्चिम के गांवों, नगरों, पहाड़ों और जंगलों में सदा घूमते रहते थे। तत्तद् स्थानों से लौट हुए यात्री गण समुद्रयात्रा में घटने वाले विचित्र साहसिक वृत्तों का तथा अपरिचित स्थानों में हुई अनदेखी अनसुनी घटनाओं का रोमांचक वर्णन सुनाकर अपने श्रोताओं के हृदय में आश्चर्य तथा विस्मय उत्पन्न किया करते थे। **"बृहत्कथा"** साक्षात् सरस्वती है, गुणाढ्य स्वयं ब्रह्मा है। यह **"बृहत्कथा"** सब गुणों की खान है। 'लम्भांकिताङ्द्भुतार्थ नरवाहनदत्तचरित्रवद् बृहत्कथा' इस कथन से प्रतीत है कि अद्भुतार्था बृहत्-कथा नरवाहनदत्त का चरित्र तथा उनके 26 विवाहें का वर्णन है परन्तु उनमें से सात ही विवाह का वर्णन शेष रह गया अन्य सब विलुप्त हो गया। इसी **"बृहत्कथा'** के आधार पर क्षेमेन्द्र कृत "बृहत्कथामंजरी" सोमदेवकृत "कथासरित्सागर" तथा बुधस्वामी कृत "बृहत्कथाश्लोकसंग्रह" नामक ग्रन्थों की रचना की गयी। इनमें अलग-अलग उपकथाओं के माध्यम से नरवाहनदत्त के विवाहों का वर्णन किया गया है। बुधस्वामी प्रणीत इस महाकाव्य में अनेक उपकथाओं के माध्यम से नरवाहनदत्त के जीवन की रामांचकारी घटनाओं का वर्णन तथा उनके सात विवाहों का वर्णन मिलता है।

इस महाकाव्य की हिन्दी टीका न उपलब्ध होने के कारण मुझे अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा परन्तु अपने पूज्य गुरूवर डा० श्रीरूद्रकान्त मिश्र जी उत्साहवर्धक प्रेरणा एवं आशीर्वाद के परिणाम स्वरूप ही इस शोधकार्य की ओर अग्रसर होने का साहस जुटा सकी और भगवान शड्.कर की असीम अनुकम्पा देवी भगवती की कृपा एवं गुरूवर के आशीर्वाद के फलस्वरूप ही यह कार्य पूर्ण कर सकी हूँ। मैं उनकी आजीवन 'ऋणी रहूँगी'।

इसके पश्चात मैं गड्.गानाथ केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद के सहयोगियों एवं पुस्तकालयाध्यक्ष महोदय की सहृदयता की आभारी हूँ जिन्होंने प्रेम पूर्ण सहयोग पूर्वक पुस्तकें उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान की। इसके

साथ ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के श्री जगदीशसाहू जी के प्रति भी आभारी हूँ जिनके अथक प्रयत्नों से ही मुझे आवश्यक पुस्तकें उपलब्ध हो सकीं।

इस शोधकार्य के पूर्ण होने में बहुत प्रसन्नता एवं नवीनता का अनुभव हो रहा है परन्तु अपने सहयोगियों के प्रति आभार प्रदर्शन न करना पूर्णतया अपराधबोध से ग्रस्त कर देगा इसलिए सर्वप्रथम मैं अपनी मित्र कावेरी जी एवं गुंजन की आभारी हूँ जिन्होंने हर विपरीत परिस्थिति में अपार मानसिक सहयोग दिया। इसके पश्चात डा0 श्रीसंजयजी की भी आभारी हूँ जिनके सहयोग द्वारा ही यह शोधकार्य पूरा हो सका। माता वैकुण्ठवासिनी विजयतिवारी जी के अमोघ आशीर्वाद के फलस्वरूप ही यह उपलब्धि सम्भव हुई है। इसके साथ ही मैं अपने पिता श्री विमलचन्द्र तिवारी जी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनके सक्रिय प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के फलस्वरूप यह शोध कार्य पूरा हो सका है। अपने भ्राता श्री नवेन्दु तिवारी एवं छोटी बहन कु0 स्मिता तिवारी की भी हृदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग के कारण ही यह शोध कार्य पूरा हो सका।

अन्त में श्री विनोद कुमार केशरवानीजी के प्रति आभार प्रदर्शन न करना एक अपराध होगा। अतएव श्री विनोद कुमार केशरवानीजी के प्रति अपना पूर्ण अभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने संस्कृत में निबद्ध अनेक श्लोकों और उद्धरणों से युक्त इस शोध प्रबन्ध का टङ्कण कार्य यथाविधि तथा शुद्धता और शीघ्रता के साथ पूरा किया है।
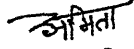
हिन्दी टङ्कण यन्त्र की अपनी सीमायें इस कारण टङ्कण की कतिपय त्रुटियों को सहृदय विद्वान और पाठक क्षमा करगें यह मेरी विनती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जितनी भी और अवश्य ही अगणित त्रुटियाँ और कमजोरियां पाई जाती है उनके लिए मैं ही पूर्णतया दोषी हूँ, यत्किंचित् गुण या औचित्य दिखाई पड़े तो उसे सुधीजनों की मुझ पर कृपा दृष्टि का प्रसाद ही समझा जाय यह मेरा विनम्र निवेदन है।

गच्छतः स्खलन भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ।।

अमिता
कु0 अमिता तिवारी

विषयानुक्रम

1

"बृहत्कथाश्लोकसंग्रह का आलोचनात्मक अध्ययन"

3

❀ ❀ ❀

प्रथम अध्याय

पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाकारों का परिप्रेक्ष्य

बृहत्कथा श्लोक संग्रह : "बृहत्कथा" का अनुवाद या पुनर्कथन

डा० प्रीति प्रभा गोयल ने 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' को मूल ग्रन्थ बृहत्कथा का प्राचीनतम उपलब्ध अनुवाद माना है। यह ग्रन्थ अभी पूर्ण प्राप्त नहीं है। डा० एस.बी. कीथ ने भी इस ग्रन्थ को 'बृहत्कथा' का विशुद्ध रूपान्तर माना है।[1]

बृहत्कथा का पहला रूपान्तर बुधस्वामी प्रणीत 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' है।

सर्ग विधान :

बुधस्वामी कृत 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' 28 सर्गों में निबद्ध है। यह ग्रन्थ अभी पूर्ण प्राप्त नहीं है। उपलब्ध अंशों में 28 सर्ग और 4524 श्लोक हैं।[2]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा० प्रीति प्रभा गोयल, पेज नं० 173
2. वही, पेज नं० 173

28 सर्गो में निबद्ध इस काव्यमय ग्रन्थ में सम्भवतः 20-25 हजार श्लोक होते हैं और सर्गो की संख्या लगभग सौ होनी चाहिए।[1]

डा0 बलदेव उपाध्याय के अनुसार यह ग्रन्थ मूलरूप में अधूरा या श्रुटित मिला है। इन्होंने 28 सर्गो में निबद्ध इस काव्यमय ग्रन्थ में 4539 श्लोक माना है। इसमें नरवाहनदत्त के 28 में से केवल 6 विवाहों की कथा पायी जाती है।[2] 28 सर्गो के इस काव्यमय ग्रन्थ में कुछ विद्वानों ने 4524 श्लोक माना है।[3] अनुमानतः इसमें 100 सर्ग और 25000 श्लोक थे। रामायण और महाभारत की तरह यह भी अपूर्व निधि मानी गयी है।[4]

कहीं-कहीं पर कतिपय विद्वानों ने इस ग्रन्थ को 100 सर्गो में निबद्ध माना है।[5]

सर्ग एवं श्लोक :

बलदेव उपाध्याय के अनुसार - कथानक में सम्भवतः 20-25 हजार श्लोक होते हैं तथा सर्गों की संख्या लगभग 100 होनी चाहिए।[6]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, मंगल देव शास्त्री, पेज नं0 323
2. संस्कृत साहित्येतिहासः आ0 रामचन्द्र मिश्र, पेज नं0 169
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पेज नं0 436
4. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सत्यनारायण द्विवेदी, पेज नं0 275
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पेज नं0 622
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पेज नं0 436

डा0 हंसराज अग्रवाल के अनुसार - क्षयावशिष्ट खण्डित प्रति में 28 सर्ग और 4539 पद्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार बुधस्वामी ने किसी न किसी रूप में असली मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' को पढ़ा था।[1]

कहीं-कहीं पर कतिपय विद्वानों ने इस ग्रन्थ में 28 सर्ग तो माने हैं परन्तु श्लोकों की संख्या में काफी मतभेद स्पष्ट होता है कहीं पर श्लोकों की 4539 तो कहीं पर 4524 संख्या मानी। सम्पूर्ण ग्रन्थ में सम्भवतः 100 से अधिक सर्ग और लगभग 25000 श्लोक रहे होगें।[2]

बृहत्कथा श्लोक संग्रह का पद्य विधान

पद्य विधान :

साधारणतः माना जाता रहा कि गुणाढ्य कृत मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' पद्यमयी है, इसी साक्ष्य के आधार पर 'परवर्ती रूपान्तरों का पद्यमयी होना माना जा सकता है तथा कश्मीर में उपलब्ध एतद्विषयक विवरणक है। अर्थात गद्य पद्य मिश्रण माना जा सकता है।[3]

कश्मीर की एक जनश्रुति के अनुसार यह ग्रन्थ श्लोक बद्ध थी। यह भी सम्भावित है कि यह ग्रन्थ 'बृहत्कथा' अंशतः पद्यमय है अंशतः गद्यमय है। इस कथा में 1 लाख पद्य माना है।[4]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, हंसराज अग्रवाल, 1947, पेज नं0 230 मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास प्राप्ति स्थान
2. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, तृतीय संस्करण, श्याम नारायण कपूर पेज नं0 380
3. लौकिक संस्कृत साहित्य, पेज नं0 145, ए.बी. कीथ
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 सत्य नारायण पाण्डेय

बुधस्वामी के ग्रन्थ का पूरा नाम 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' है। अतः जाना जाता है कि इस ग्रन्थ का उद्देश्य पद्य रूप में बृहत्कथा का संक्षेप देना है। आज 28 सर्ग का ग्रन्थ केवल खण्डित रूप में उपलब्ध होता है, पता नहीं लेखक ने इसे पूरा लिखा या अधूरा ही छोड़ दिया था।[1]

लोक कथाओं में बृहत्कथा का स्थान अग्रगण्य माना गया है। बृहत्कथा का लोक कथा के रूप में भी वर्णन किया जाता है। रामायण एवं महाभारत जिस प्रकार परवर्ती साहित्य के लिए उपजीव्य काव्य रहे हैं इसी प्रकार बृहत्कथा ने भी भारतीय साहित्य को निरन्तर अनुप्रमाणित किया है।

डा0 बलदेव उपाध्याय ने नाटकों के उपजीव्य ग्रन्थों के लिए रामायण के पश्चात 'बृहत्कथा' का नाम्नानिर्देश किया है।

अतएव यह स्पष्ट होता है कि यह 'बृहत्कथा' इन पूर्ववर्ती ग्रन्थों से पहले की रही होगी। यह ग्रन्थ भारतीय संस्कृत साहित्य के मूल ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है।[2]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, हंसराज अग्रवाल, पेज नं0 1988-1947
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पेज नं0 435

द्वितीय अध्याय

रचना एवं रचनाकार

मूल ग्रन्थ के रचयिता

गुणाढ्य का जीवन परिचय

कश्मीरी संस्करणों के अनुसार :

गुणाढ्य का जन्म गोदावरी के तट पर बसे प्रतिष्ठान नगर में हुआ था। वह थोड़ी सी संस्कृत जानने वाले सात वाहनके काल का बड़ा कृपा पात्र था। इससे स्पष्ट होता है कि गुणाढ्य सात वाहन के काल के कवि थे।

नेपाली संस्करण के अनुसार :

गुणाढ्य का जन्म मथुरा में हुआ था और वह उज्जैन के नृपति मदन का आश्रित था। उक्त दोनों देशों के संस्करणों के गम्भीर अध्ययन से नेपाली की अपेक्षा कश्मीरी की बात अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है। कदाचित् नेपाली संस्करण के रचयिता का अभिप्राय गुणाढ्य को नेपाल के समीपवर्ती सिद्ध करना है। भारतीय साहित्य में गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' की क्षतिपूर्ति स्यात् कभी नहीं की जा सकती। इनका महत्व किसी भी सन्दर्भ में व्यास और वाल्मीकि से कम नहीं था।

गुणाढ्य की वाचनायें मूल निवास स्थान पर कुछ अस्पष्ट रूप से प्रकाश डालती है। यहां पर 'बृह0क0 मंजरी' और 'कथासरि0 सागर' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन वाचनाओं से स्पष्ट होता है कि गुणाढ्य किसी सुप्रतिष्ठित नगर का निवासी था।[1]

'कथा सरित्सागर' वर्णन से स्पष्ट है कि प्रतिष्ठाता में कोई सुप्रतिष्ठित नामक उपनगर था।[2]

---

1. सं0 सा0 का इतिहास - डॉ0 हंसराज अग्रवाल
2. तदैव

साहित्य में उल्लेख :

गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का बहुत ही पुराना उल्लेख दण्डी ने 'काव्यादर्श' में किया है -

कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते ।
भूत भाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम् ।।[1]

सुबन्धु ने वासवदन्ता में भी गुणाढ्य का नाम सादर लिया है और कहा कि बृहत्कथा अपने समय में अत्यन्त लोक प्रिय रही होगी। -

बृहत्कथा लम्बैरिव सालभाजिकानिवहैः।[2]

रामायण और महाभारत की कथा के समान 'बृहत्कथा' भी भारतीय साहित्य की एक अपूर्व निधि है -

श्री रामायणमहाभारत बृहत्कथानां
कवीन् नमस्कुर्मः ।
त्रिस्तोता इव सरसा
सरस्वती स्फुरतियैभिन्नः ।।[3]

दशरूपक के रचयिता धनंजय (1000 ई0) ने 'बृहत्कथा' को रामायण महाभारत के समान सुविख्यात माना -

रामायणादि च विभाण्य बृहत्कथां च।[4]

त्रिविक्रम भट्ट (1915 ई0) ने 'नलचम्पू' में -

धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषोरंजितो जनः ।[5]

---

1. दण्डी काव्यादर्श
2. सुबन्धु वासदन्ता
3. आर्या सप्शती
4. दशरूपक प्रथम प्रकाश, पृष्ठ 168
5. 'नलचम्पू' प्रथम उन्छवास, 14 श्लोक, पृष्ठ नं0 17

गोवर्धनाचार्य ने (1200 ई0) ने 'आर्यासप्तशती'[1] में -

अतिदीर्घ जीविदोषाद् प्यासेन
यशोडपहारितं हन्त ।
केनोच्येत गुणाढ्य
स एव जन्मान्तरपन्नः ।।[2]

महाकवि बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थ "हर्षचरित" में "बृहत्कथा" को हरलीला के समान माना गया है -

समुद्दीपितकंदर्पा कृत गौरी प्रसन्ना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय ।।[3]

आदि ग्रन्थों में गुणाढ्य के इस ग्रन्थ प्रशंसा अथवा कवि का नाम अथवा ग्रन्थ का नाम आने से स्पष्टतः अनुमान किया जा सकता है गुणाढ्य इनके पूर्ववर्ती रहे होगें।[4]

लैकोट ने गुणाढ्य को सातवाहन का समकालभव होनेके कारण ईसा की प्रथम शताब्दी में रखा है। इसके विरूद्ध मत वालों का कथन है कि सातवाहन केवल वंशवाचक का नाम है अतः इससे कोई असन्दिग्ध परिणाम नहीं निकाला जा सकता है। 'कातन्त्रव्याकरण'[5] के कर्ता 'शर्वशर्मा'[6] के साथ नाम आने के कारण गुणाढ्य ईसा की प्रथम शताब्दी के बाद का मालूम होता है।

---

1. डा0 अखिलेश पाठक : प्रकाशक - रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड, लखनऊ
2. गोवर्धनाचार्यसूरि आर्यासप्तशती
3. बाणभट्ट कृत 'हर्षचरित'
4. स्वयं
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास
6. हंसराज अग्रवाल, मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास 1947

मूल ग्रन्थ बृहत्कथा का समय :

लोक कथाओं में 'बृहत्कथा' का स्थान अग्रगण्य माना गया है। 'रामायण' और 'महाभारत' जिस प्रकार परवर्ती साहित्य के लिए उपजीव्य काव्य रहे हैं उसी प्रकार 'बृहत्कथा' ने भी भारतीय साहित्य को निरन्तर अनुप्रमाणित किया है। पैशाची भाषा में निबद्ध गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' की रचना का काल व्युह्लर के अनुसार प्रथम अथवा द्वितीय शती है।[1]

डा0 ए0बी0, कीथ के अनुसार - यह रचना चतुर्थ शती के बाद की नहीं हो सकती। कश्मीर की एक जन श्रुति के अनुसार यह पद्यमयी थी किन्तु दण्डी ने 'काव्यादर्श' में इसे गद्यमय बताया है।[2]

भाषा एवं शैली :

डा0 मंगल देवशास्त्री ने 'बृहत्कथा' के मूल ग्रन्थ के 70,0000 श्लोकों के सप्तमांश को ही बृहत्कथा माना है। इस ग्रन्थ में गुणाढ्य ने संस्कृत, प्राकृत अथवा किसी लोक भाषा का प्रयोग न करके पैशाची भाषा का प्रयोग किया है क्योंकि गुणाढ्य ने प्रतिज्ञा की थी कि वह संस्कृत, प्राकृत अथवा किसी लोक भाषा का प्रयोग करना छोड़ देगा। इस प्रतिज्ञा के पीछे भी एक कथा प्रचलित है।

गुणाढ्य थोड़ी सी संस्कृत जानने वाले सातवाहन का कृपा पात्र था। एक दिन जल बिहार के समय रानी ने राजा से कहा - मौदकैः - उदकैः मा, अर्थात जलों से न। सन्धि ज्ञान से शून्य राजा ने इसका अर्थ

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, हंसराज अग्रवाल

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 प्रीति प्रभा गोयल

'लडडूओं' से समझा अपनी मूल ज्ञात होने पर राजा को खेद हुआ और उसने संस्कृत सीखने की इच्छा प्रकट की। गुणाढ्य ने कहा - मैं आपको छः वर्षो में संस्कृत पढ़ा सकता हूँ। इस पर हंसता हुआ (कातन्त्र व्याकरण का रचयिता) शर्ववर्मा बोला - मैं तो छः महीने में ही संस्कृत पढ़ा सकता हूँ। उसकी प्रतिज्ञा को असाध्य समझते हुए गुणाढ्य ने कहा - यदि तुम ऐसा कर दिखाओ तो मैं संस्कृत, प्राकृत या प्रचलित अन्य कोई भी भाषा का प्रयोग करना छोड़ दूँगा। शर्ववर्मा ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखायी, तो गुणाढ्य विन्ध्य पर्वत के अन्दर चला गया और वहां उसने पिशाचों (भूतों) की भाषा में इस 'बृहत्कायग्रन्थ' को लिखना प्रारम्भ कर दिया। गुणाढ्य के शिष्य सात लाख श्लोकों के इस पोथे को राजा सातवाहन के पास ले गये, किन्तु पैशाची भाषा में होने के कारण राजा ने अवहेलना के साथ तिरस्कार कर दिया।[1] गुणाढ्य बड़ा विषण्ण हुआ। उसने अपने चारों ओर पशु पक्षियों को सुनाते हुए ग्रन्थ को ऊँचे स्वर में पढ़ना प्रारम्भ किया और पठित भाग को जलाने लगा। तब ग्रन्थ की कीर्ति राजा तक पहुंची और उसने उसका सातवां भाग (लगभग एक लाख पद्य समूह) बचा लिया यही भाग ही गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' है।[2]

बुधस्वामी का परिचय :

बृहत्कथा श्लोक संग्रह के रचनाकार - बुधस्वामी के समय स्थान के विषय का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। परन्तु वाचस्पति गैरोला ने बुध स्वामी का समय लगभग 900 ई0 मानते है।[3]

---

1. मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह'
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए.वी. कीथ
3. साहित्य संस्कृत का इतिहास, पेज नं0 622 गैरोला

कहीं-कहीं पर श्लोकों में 'बृहत्कथा' के संक्षेप रूप 'श्लोक संग्रह' के रचयिता बुधस्वामी के विषय में अनुमान किया जाता है कि कवि बुधस्वामी हमारे लिए एक नाम के अतिरिक्त कुछ नहीं है ये नेपाल के थे इसका कोई मूल[2] प्रमाण नहीं है, न ही इनके जन्म का कहीं वर्णन मिलता है।[1]

बृहत्कथा श्लोक संग्रह का समय

1. **समय :**

बुधस्वामी ने "बृहत्कथा श्लोक संग्रह" नामक ग्रन्थ का निर्माण पांचवी शताब्दी में किया। गुप्तों के गौरवमय स्वर्णयुग में इस ग्रन्थ का निर्माण सम्पन्न हुआ।[2]

नेपाल के बुधस्वामी ने "बृहत्कथा श्लोक संग्रह" की रचना 8वीं, 9वीं शती में की थी।[3]

ग्रन्थों के हस्तेलेखों की परम्परा से साधारण लिया[3] जा सकता है, इसी परम्परा के आधार पर हस्तलेख का सम्भावित समय प्राचीन समय

---

1. लौकिक - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पेज नं0 145 ए0बी0 कीथ
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पेज नं0 433
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 प्रीतिप्रभा गोयल, पेज नं0 173
   संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पेज नं0 275
   डा0 सत्य नारायण पाण्डेय, पेज नं0 367

से 12वीं शताब्दी तक है, बृहत्कथा श्लोक संग्रह 8वीं 9वीं शती माना जा सकता है।

लोक कथाओं में प्राचीनतम संग्रह "बृहत्कथा" है जिसका समय ब्यूह्लर के अनुसार प्रथम या द्वितीय शती है परन्तु नवीन खोजों के आधार पर 78ई सिद्ध हो गया। इसके आधार पर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' के पश्चात ही बृहत्कथा श्लोक संग्रह की रचना की गयी होगी।[1]

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियां नेपाल से मिली है अतः इसका नाम नेपाली संस्करण रखा गया है। किन्तु इससे ग्रन्थ या ग्रन्थकार का नेपाल के साथ सम्बन्ध जोड़ने का कोई हेतु दिखाई नहीं देता। इसका समय 8वीं 9वीं शताब्दी माना जाता है।[2]

इस महाकाव्य के समय के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि यह महाकाव्य नेपाल में प्राप्त है। इस ग्रन्थ का लैकोट और रेनन के द्वारा फ्रेंच में अनुवाद एवं सम्पादन किया गया। सर्वप्रथम यह 1908 में पेरिस में प्रकाशित की गयी। भारत में सर्वप्रथम डा0 वी.एस. अग्रवाल द्वारा कुछ टीका के साथ 1974 में प्रकाशित की गयी। श्री लैकोट के अनुसार इस महाकाव्य का समय 8वीं अथवा 9वीं शती है परन्तु डा0 वी.एस. अग्रवाल ने इसका समय 5वीं शती माना है।

---

1. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पेज नं0 275
सत्य नारायण द्विवेदी

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पेज नं0 199, 1947
हंसराज अग्रवाल

तृतीय अध्याय

कथावस्तु

कथावस्तु

भूमिका -

28 सर्गों में निबद्ध यह ''बृ0 क0 श्लो0 सं.'' नामक महाकाव्य अनेक दिलचस्प एवं साहसिक घटनाओं से परिपूर्ण है। इस महाकाव्य का नायक नरवाहनदत्त एक के बाद एक साहसिक यात्रायें करता है। और इन यात्राओं के मध्य सुन्दर पत्नियां प्राप्त करता है। जिनकी संख्या सात होती है। उन सबकी अपनी व्यक्तिगत विशेषतायें होती है। इसमें नायक के अपने प्रत्येक मित्रों की भी अपनी ध्यानाकर्षक एवं विशिष्ट विचित्रताएं होती हैं। इनमें कथाएं आनन्ददायक घटनाओं एवं रोचक कहावतों से परिपूर्ण है। इस महाकाव्य में यात्रियों का कारवां पर्वतों और घने वनों के मध्य से होकर गुजरता है। इन पर्वतों के मध्य से गुजरते हुए वे कहीं पर घोर साहसिक कार्य करते है तो कही पर्वतों की ऊंचाइयों पर घूमते हैं। कही खतरनाक घाटियों को बकरे की पीठ पर बैठकर पार करते हैं। तो कही विचित्र नदियों को लम्बे बांस की सहायता से पार करते हैं। कहीं पर पाठक अध्ययन करते समय भय से अपने नेत्रों को बन्द कर लेते है। इसमें कहीं पर राजसी दरबार की शोभा का वैभव परिलक्षित होता है तो कहीं पर आश्रम की नीरवता पूर्ण शान्ति दृष्टिगोचर होती है। कहीं पर किसी क्षण पाठक प्रेमियों के प्रेमलाप का निर्जन बगीचों में आनन्द उठाते हैं तो दूसरे क्षण दिव्य पुरुषों के आकाश युद्ध का वर्णन देखते है यह कथा सांस्कृतिक आकड़ों से परिपूर्ण है। इसमें तात्कालिक समाज का सुन्दर चित्रण है। यह वर्णनात्मक कथायें प्राचीन महाकाव्यों तथा महाकवि कालिदास के परम्परागत महाकाव्यों और अन्य नाटकों की तुलना में अधिक दिलचस्प हैं महाकाव्य में समाज के मध्यम वर्ग का जीवन चित्रण है। जबकि कालिदास के महाकाव्यों तथा नाटकों में समाज के उच्च वर्ग के जीवन का चित्रण है।

वर्तमान स्वरूप में यह कथा अपूर्ण है। इस वस्तुतः इसमें नायक के 26 विवाहों का वर्णन है। परंतु पूर्णरूप में यह महाकाव्य अनुपलब्ध है। उपलब्ध 28 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में नायक के सात ही विवाहों का वर्णन प्राप्त होता है। यह महाकाव्य गुणाढ्य कृत मूल ग्रन्थ "बृहत्कथा" का अंश मात्र है। इस महाकाव्य में वर्णित कथाओं में अनेक उपकथायें हैं तथा कहीं-कहीं पर उपकथाओं में भी कई अन्तः कथायें जुड़ी हुई है। इन समस्त कथाओं का क्रमशः सारांश इस प्रकार है-

35

प्रथम सर्ग कथा वस्तु :

पृथ्वी पर उज्जयिनी नाम की अत्यन्त भव्य एवं मनोहर प्रसिद्ध नगरी में महासेना नाम के राजा थे उनके कृष्ण की तरह सोलह हजार रानियां थी और गोपाल और पालक नाम के दो पुत्र थे। उनके भगवान बृहस्पति के समान भरतरोहतक नाम के मंत्री थे उनके भी सुरोहा और रोहतक नाम के बुद्धिमान पुत्र थे। वे सभी विद्याओं में निपुण हो गये। गोपाल राजा बनने पर एक बार नगर को देखने की इच्छा से भ्रमण करने गये। राजा का देखने की भीड़ में अचानक भगदड़ मच गयी। भीड़ के मध्य एक कन्या गिरने से एक कन्या अपना संतुलन खो बैठी और कहा क्या मेंने आपके पिता की हत्या की है जो मुझे कुचलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे राजा दुःखी हुए और रात्रि और दिन व्यतीत करने के पश्चात् सांयकाल को जनापवाद का कारण जानने के लिये नगर भ्रमण किया तो भी पाया कि राज्य मैं राजा के ऊपर पिता की हत्या का अपवाद फैला हुआ है। कष्ट से भिन्न हृदय से महल वापस आये और किसी तरह रात्रि व्यतीत करके प्रातः काल शीघ्र ही दो मन्त्री को बुलाकर इस जनापवाद निन्दा का कारण पूँछा उन्होंने भयपूर्वक कारण बताया–

महाराज एक बार आपके पिता प्रद्योत काफी वृद्व हो चुके थे तो उन्होंने नाई द्वारा काला बाल उखाड़ने दिये जाने पर उसकी हत्या कर दी थी और भोजन करते समय दांत के नीचे कंकड़ पड़ जाने पर रसोइये की हत्या कर दी। उनके इस कार्य से प्रजा उनके विरूद्ध हो गयी हमारे पिता की इससे पूर्व ही मृत्यु हो चुकी थी, इस समाचार से गहरे दुःख के कारण क्षयरोग ग्रस्त हो गये और प्रजा के प्रति उदासीन हो गये जो परिरिथतियों के अनुसार उचित नहीं था। इसलिये राजा को कैद में डाल दिया और अपवाद फैला दिया कि राजा कि मृत्यु हो गयी। यही लोक निन्दा का कारण है। इस पर राजा बहुत शर्मिन्दा हुये और असहाय व्यक्ति की तरह आप दोनों के अतिरिक्त कौन दोष रहित योजना के विषय में सोच सकता है। राजा पालका ने सुशासन करते हुए काफी समय बीत जाने के पश्चात् भाई पालका को राजा बनाकर वन जाने का का दृढ़ संकल्प मंत्रियों को बताया। अपने भाई पालका को राजा

बनाकर अपना केश मुड़वा कर अपने पूर्व किये गये कष्टों की पीड़ा को शान्त करने वन चले गये।

द्वितीय सर्ग

इसके पश्चात् राजा पालका अपने भाई के वियोग से अत्यन्त दुःखी हुये। प्रजा और राज्य को उसके समय पर छोड़ दिया। किसी ने राजा पालका को राजा गोपाल के सामने की गयी पृथ्वी की रक्षा की प्रतिज्ञा का स्मरण कराया और प्रजा की रक्षा करने का निवेदन किया- आप अच्छा व्यक्ति नियुक्ति कर प्रजा को सुखी करने को कहा परन्तु घटना के प्रति इस तरह उदासीन होने के कारण सुनी नही गयी। शीघ्र ही प्रजा राजा के सुशासन के द्वारा प्रसन्न हुयी।

एक बार पुनः राजा एक ब्राह्मण से किसी पूज्य धर्म के विषय में जानना चाहा । और ब्राह्मण से दीक्षा संस्कार ग्रहण करने में लीन हो गये। तो पुनः सभी मन्त्रीगण डर गये, और उन्हें बताया इस दीक्षा रूपी दलदल से कुछ उद्धार नहीं होगा। आप अर्थ और काम त्याग दो क्योंकि इनके बिना धर्म का सार ग्रहण करना कठिन है। राजा ने सलाह मान ली और अन्तःपुर गया रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रातःकाल शीघ्र उठकर पूजा आदि के पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण कर बड़ो के अर्शीवाद के पश्चात् प्रजा के हितकर कार्य किये। सायंकाल में पेय आयोजन किया। उसमें सभाओं को आमंत्रित किया। और सभी नृत्य आदि का भरपूर आनन्द उठाया। और प्रातःकाल शीघ्र ही शान्डिल्य नामक ब्राह्मण से रात्रि में स्वप्न में देखे गये मतवाले हाथियों को देखना इसके अनिष्ट फल के विषय में पूँछा। ब्राह्मण ने हाथी को भगवान गणपति का रूप कहा यह विघ्न विधान नहीं है। आपकी विघ्न बाधा समाप्त हो चुकी है। आप निःसंकोच प्रजा कार्य करे। इसके पश्चात् पद्योत ने अपने स्वप्न में आयी सात रंग की चिड़िया जो सर पर आकर बैठ गयी थी। फल के विषय में पूँछा इस पर ब्राह्मण चुप हो गये। सभी के द्वारा विश्वस्त किये जाने पर भयपूर्वक बताया कि जो अहित है वह निश्चय ही बाद में हितकारी होगा आप सिंहासन पर बैठने की इच्छा छोड़ दे। अन्यथा आज से सातवें दिन आप मारे जायेंगे। यह सुनकर वह क्रोधित हुआ और आंख निकालने का आदेश दे दिया

अवधि शान्त होने पर ब्राह्मण को स्वप्न के फल अवधि शान्त होने पर ब्राह्मण को स्वप्न के फल अवधि तक कैद में डाल दिया। और स्वयं इसी बीच के समय को पापों को शान्त करने को पर्वत पर चले गये परन्तु ठीक सातवें दिन तीव्र तूफान और बहुत तेज बिजली चमकी, और तूफान ने राज्य की प्रतिकृति को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। स्वप्न सत्य हुआ शान्डिल्य नामक ब्राह्मण को सम्मान पूर्वक कैद से बाहर लाये उनसे माफी मांगी और पुरस्कृत किया।

एक बार राजा कुछ निम्न वनवासी जब सिंहासन पर कब्जा करना चाहते थे महाराज ने वीरतापूर्वक इस संकटकाल को दूर किया। अन्त में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की जीवन में मात्र के विषय में बताया उसका सिंहासनारोहण करके अपने भाई गोपाल की ही तरह कमण्डल धारण कर वन तपस्या करने चले गये।

तृतीय सर्ग

इसके पश्चात् अवन्तिवर्धन अवन्तिदेश के राजा हुये। उनके राज्य में सभी सुखी व सम्पन्न थे। एक बार अवन्तिवर्धन शिकार खेलने हेतु वन गये वहाँ एक वनकन्या को कालिन्दी नदी के तट पर देखकर आसक्त हो गये। एकान्त में रहते हुये महल राज्य कार्यों के प्रति उदासीन हो गये और महल के अन्दर ही रहने लगे। एक दिन सायंकाल समय में बाहर कोलाहल सुना, बाहर आकर देखा कि संघमर्दन नामक हाथी सभी को परेशान कर रहा था। सभी वृक्षों को तहस नहस कर रहा है। कोई भी उसे रोक नहीं पा रहा हैं तभी एक कन्या सामने आयी उसने हाथी को रोका। वह हाथी तीव्र उत्तेजना से शान्त होकर उसे प्रणाम किया। यह देखकर अवन्तिवर्धन आश्चर्य चकित हो गये। सुरोहक से परिचय पूँछा यह श्रृषि सिद्धमन्त्री के ज्ञाता उत्पलहस्तक की पुत्री सुरसमञ्जरी, कुछ समय पूर्व इसी जाति ने चढायी कर दी थी। राजा इसी सुरस मञ्जरी में आसक्त थे। उसी कारण सभी चिकित्सकों का इलाज बेकार गया दिन प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे थे। सुरोहक ने यह समाचार माता अङ्गारवती को दिया। रानी अङ्गारवती शीघ्र ही उत्पलहस्तक के पास गयी और अने प्रपौत्र अवन्तिवर्धन का विवाह सुरसमञ्जरी के साथ करने का आग्रह किया। शीघ्र ही उत्कपहस्तक के सुरसमञ्जरी के साथ विवाह कर दिया। रानी अङ्गारवती औषधि स्वरूप उसे ले आयी। एक

दिन महल की छत पर अचानक रोने लगी अवन्तिवर्धन ने रोने का कारण पूँछा उसने बताया मैं आपकी शरण में हूँ अब में वनवासियों की रक्षा के लिये कुछ नहीं कर सकती मेरे पिता इस समय परेशानी में हैं उनकी परेशानी का कारण सुनिये- मेरे पिता उत्पलहस्तक इस वन से पूर्व सप्तपूर्ण में रहते थे, वहाँ इफ्फक नामक अधमपुरुष से बचपन में मेरी विवाह करने का वचन दे दिया था। एक बार आकाश मार्ग से जा रहा था तो उसकी मधुमक्खियों से घिरी माला पर्वत पर तपस्या कर रहे नारदमुनि पर गिर पड़ी। वे अत्यन्त क्रोधित हुये और शाप दे दिया- तू चाण्डाल मनुष्य होवे। इस पर उत्पलहस्तक चिन्तत हुआ नारद मुनि का क्रोध शान्त किया और शाप के तीव्र प्रभाव को कम करने का प्रतिकार पूँछा। कमान से निकले तीर की तरह शाप वापस नहीं हो सकता तुम्हारी पुत्री का विवाह राजागोपाल पुत्र अवन्तिवर्धन से होगा। इसी के फलस्वरूप में आपकी सेविका हो गयी। इफ्फक द्वारा क्रोधवश मेरे पिता से स्थान खाली करवा दिया है। इफ्फ़क के मन की आशंका से रो रही हूँ। वह पापी शीघ्र ही मारा जायेगा। इस प्रकार आश्वस्त किये जाने के पश्चात राजा अवन्तिवर्धन रानी सुरसमञ्जरी को सरोवर घुमाने के लिये शिव तडाग नामक विचित्र सरोवर के तट पर ले गया। वहाँ पर इफ्फक ने इन दोनों का अपहरण कर किया। सभी चिन्तित हो गये, शीघ्र ही यह समाचार चारों तरफ फैलगया सभी नागरिक रोने लगे। राजापालका को भी वन से समाचार दिया गया वह महल आये और शीघ्र इफ्फक से अवन्तिवर्धन औरे सुरसमञ्जरी को छोड़ने को कहा। न छोड़ने पर युद्ध करके दोनों को छुडाया और उससे अपहृत करने का कारण पूँछा। इफ्फक ने बताया सुरसमञ्जरी की सगाई मेरे साथ हुई थी परन्तु इसके पिता ने राजा के साथ विवाह कर दिया उत्पलहस्तक ने बताया कि यह नारद मुनि के वरदान स्वरूप हुआ और इसे शाप से बचाने के लिये मेंने ऐसा किया। इसके बाद इफ्फक को बताया कि एक वर्ष तक तपस्या करो तभी शाप मुक्त हो सकोगे। इसके पश्चात् सभी प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

चतुर्थ अंक

इसके पश्चात् राजा विद्याधर ने काश्यप ऋषि से पूँछा दुर्लभ पत्नी को कैसे प्राप्त किया। इस पर काश्यप ऋषि ने सुवक्ता की भाँति कथा सुनायी वत्स देश में यमुना नदी के

तट पर कौशाम्बी नामक शहर है। उस देश के राजा विद्यारधर के वासवदत्ता और पद्मावती दो रानियाँ थी और ऋषभ, रुमण्वन,यौगन्धरायण, और वसन्तक नामक चार मित्र थे। राजा इन्हीं मित्रों के साथ अपना समय व्यतीत करता था। एक बार किसी व्यापारी का पुत्र उनके महल आया और अपने पिता के भयानक समुद्रयात्रा में जहाज डूब जाने से मृत्यु हो गयी और हमारे भाई की पत्नी बची हुई सम्पत्ति में हिस्सा नहीं दे रही है। इस पर महाराज ने महिला प्रतिहारी को उसकी भाभी के पास भेजा और सम्पत्ति में बराबर हिस्सा देने के लिये कहा– इस पर व्यापारी की पत्नी ने कहा– महाराज बहुत से समुद्री यात्री वापस आ गये शीघ्र ही मेरे पति भी वापस आ जायेगें अथवा शीघ्र ही मेरे देवर भतीजा प्राप्त करेगें तो आप बताइये में कैसे सम्पत्ति में हिस्सा दे दूँ यदि दोनों में से कुछ नहीं होता है तो आप बहुत शीघ्र ही सम्पत्ति को बराबर बॉट दें शीघ्र ही उसका पति वापस आ गया उन्होंने एक सुन्दर पुत्र प्राप्त किया। राजा ने सम्पत्ति बराबर–बराबर बाँट दें। राजा विद्याधर के कोई पुत्र नहीं था इस कारण वे अत्यन्त चिन्तित था। विषाद से ग्रस्त पुत्र प्राप्ति से अत्यन्त चिन्तित थे। पुत्र प्राप्ति की कामना के लिये देवी पिंङ्गालिका की आराधना की। एक बार राजा विद्याधर ने अपनी धाती से पूछा ये लड़के आपके कैसे पुत्र हैं बिन पति 'सहयोग के पुत्र नहीं प्राप्त कर सकते? इस पर उन्होंने इस आश्चर्य को विस्तार से कहा– अवन्ति देश में ब्राह्मणों की अच्छी व्यवस्था थी यहीं पर सोमदत्त नामक ब्राह्मण है वह तीनो वेदों का ज्ञाता है, उसके वसिष्ठ के पत्नी की तरह पत्नी थी। कुछ समय पश्चात् उनके एक पुत्री हुई। सोमदत्त स्त्रियों को पढ़ाने में कुशल था एक अच्छा भविष्यवक्ता था, उसने बताया कि यह भविष्य में धन व पुत्र से हीन होगी। शीघ्र ही वह बड़ी हुई और अन्य छात्रों के साथ ही शिक्षा दीक्षा ली। विवाह लायक अवस्था होने पर भी कोई भी वर उसके कुरुप झगडालू प्रवृत्ति का होने के कारण वर नहीं मिला।

एक बार मरने की इच्छा से समुद्र तट पर गयी परन्तु वहाँ पशुपक्षियों को देखकर मरने की इच्छा त्याग कर भगवान विष्णु की आराधना की। भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर वरदान मांगने को कहा– उसने कहा भगवान् मुझे मृत्यु दें। भगवान् ने कहा– आराधना का यहपुरस्कार नहीं है इसलिये अपने पति, पुत्र और धन से सम्बन्धित वरदान मांगों। इसके पश्चात् उसे चारों वेदों का ज्ञाता ही के पति रूप में प्राप्ति होगी, और सुन्दर पुत्र प्राप्ति का

वरदान देकर भगवान् अदृश्य हो गये। इसके पश्चात् अपने पिता के घर लौट आयी। कुछ समय पश्चात् एक बार चारों वेदों का ज्ञाता ब्राह्मण घर आया और उस कन्या को देखकर उसके पिता से उसका हाथ मांगा। शीघ्र ही उसका विवाह उस ब्राह्मण से हो गया। एक बार उसने मालिश करने को कहा झगडालू प्रवृत्ति के कारण कहा– क्या मुझे मालिश करने वाली बनाकर लाये हो इस पर उसने क्रोधित होकर कहा– क्या में तुम्हारे द्वारा एक किलो जैसे खरीद लिया गया हूँ उसने भी चिल्लाकर कहा हाँ। इसपर वह क्रोधित होकर कहा– तुम पिङ्गालिका नहीं हो सकती? कौन हो तुम? इसके पश्चात् घर छोड़कर चला गया और वही में हूँ। पति द्वारा छोड़ दिये जाने के कारण में बिना पति के इस देश में आयी हूँ और रानी वासवदत्ता ने मुझे और मेरे बच्चों को भोजन देकर अनुगृहीत किया है।

पञ्चमसर्ग

इसके पश्चात् राजा ने सभा समाप्त करके अपने मित्र सलाहकारों को बताया कि इस संसार में मनुष्य तीन कर्तव्यों के साथ इस पृथ्वी पर जन्म लेता है- 1. वेदों का अध्ययन करने के लिये, 2. ऋषियों का सम्मान करने के लिये 3. पुत्र द्वारा जल तर्पण के लिये। परन्तु में जल तर्पण से हीन हूँ। किसी ने बताया है कि पुत्र का र्स्पश अत्यन्त ठण्डा होता हैं राजा को किसी ने सन्तान प्राप्ति के लिये जल में साथ भगवान विष्णू की आराधना करने को कहा। राजा ने नागवन उद्यान में पूण्य दिन से जल और अग्नि के साथ ईश्वर की आराधना किया। कुछ दिन पश्चात् रानी ने स्वप्न में भगवान विष्णु और कुबेर को स्वप्न में देखा प्रसिद्ध नक्षत्रशास्त्री आदित्यशर्मा ने ने स्वप्न का फल एक पुत्र प्राप्ति बनाया। इसके पश्चात् रूमण्वन, यौगन्धरायण और श्रृषभ ने भी स्वप्न में क्रमशः गरूड वाहन पर बैठे हुये भगवान विष्णु हवायें और गायों का समूह अग्नि देवता देखा और स्वप्न के फलस्वरूप कुछ समय पश्चात् रानी पद्मावती गर्भवती हुई यह समाचार सभी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। एक बार रानी पद्मावती की सास उसका मुख पीला देखकर किसी बीमारी की आशंका से चिकित्सकों से परामर्श किया इसके पश्चात् उससे किसी विशेष इच्छा के विषय में पूँछा। लज्जा वश अपनी इच्छा न प्रकट करने पर कथा सुनायी- एक बार तुम्हारे ससुर ने इसी प्रकार मुझसे इस अवस्था में किसी विशेष इच्छा को पूँछा। मेरे बताने पर मेरी इच्छा पूरी की तुम भी बताओ हम पूरी करेंगे। इसके पश्चात हम लोग जब हम महल की छत से सुयामुन पर्वत की प्राकृतिक लालिमा को देख रहे थे। अचानक गरूड पक्षी का ज्येष्ठपुत्र मुझे अपहृत कर ले गया। वह मुझे खाने ही जा रहा था कि दो ऋषि कुमारों ने हमें बचा लिया और वसिष्ठ ऋषि के आश्रम ले गये और वहीं पर कुमार उदयन का जन्म हआ वहीं पर कुमार उदयन का जातकर्म नामकरण संस्कार का विधिवत करके शिक्षा-दीक्षा पूरी एक बार कुमार उदयन ऋषि वसिष्ठ द्वारा राके जाने पर भी दूर स्थित अद्‌भुत सरोवर पर चले गये। वहाँ उस सरोवर में सरोवर में सर्पो को नृत्य करते देखा। वे सर्प कुमार उदयन को देखकर भयभीत होकर भाग गये। पुनः विश्वस्त किये

जाने पर बाहर आये और कुमार उदयन को सरोवर के अन्दर स्थित भोगवती नामक नगरी में ले गये। वह नगरी वास्तव में अत्यन्त विचित्र थी। ऊपर से तो शान्त सरोवर था परन्तु अन्दर भव्य नगरी थी। वहाँ जाकर कुमार उदयन ने संगीत शास्त्र की शिक्षा ली। वापस आकर मन्त्र मुग्ध कर देने वाली घोषवती नामक विद्या सुनाया। इसके पश्चात कुमार उदयन और उनकी माता को दो ऋषिकुमारों के साथ आकाश मार्ग से राज्य वापस भेज दिया गया है वहॉ पर राजा काफी समय पश्चात पुत्र और पत्नी को देखकर हर्ष से विह्वल हो गये। पुत्र मिलन के समय से लेकर उस उद्यान में ऋषि कुमारों की मृगछाल स्थापित कर पूजा करते हैं और मृगलिका महोत्सव का आयोजन करते हैं। इसलिये जब रानी वासवदत्ता नहीं बोली तो महाराज ने पद्मावती से पूछने को कहा तब उसने कहा- उसकी इच्छा पूरी करना कठिन हैं उस पर रानी मृगयावती ने कहा इस संसार में कुछ भी पूरी करना कठिन नहीं है इसके बारे में एक कथा सुनो-

मथुरा में उग्रसेन नाम का राजा था। उनके मनोरमा नाम की अत्यन्त सुन्दर पुत्री थी। एक बार एक अपने महल के उद्यान में मयूर और सारंग पक्षी के साथ क्रीडा कर रही थी। तभी द्रुमिल नामक दुष्ट राक्षस उसे देखकर आकृष्ट हुआ। उसने वेश बदल कर राजा से उसका हाथ मांगा और शीघ्र ही उससे विवाह कर लिया इसके पश्चात् शीघ्र ही वह गर्भवती हो गई। गर्भावस्था के समय एक बार उससे किसी विशेष इच्छा के विषय में पूँछा उसने भगवान विष्णु के मांस आंत और खून से प्यास बुझाना चाहा। यह सुनकर सभी सोच में पड़ गये अपने मन्त्रियों से परामर्श करके भगवान विष्णु को एकमूर्ति में मांस आदि भरकर मन्द प्रकाश में रखकर मांस आदि खाने को दिया। इस प्रकार उपाय से राजकुमारी मनोरमा की इच्छा पूर्ति की और उसने कंस नामक पुत्र को जन्म दिया। इसलिये कुछ भी असम्भव नहीं है। इसके पश्चात आकाशयान देखा जिससे आकशमार्ग में विचरण किया जा सकता था। इस पर सभी मित्र आश्चर्य चकित हुये उन्होंने जलयन्त्र, और पत्थरयन्त्र और धूलयन्त्र के विषय में सुना था परन्तु इस आकाश यन्त्र से अनभिज्ञ थे। इसके विषयमें सिर्फ ग्रीक्वासी ही जानते थे या पुक्वष्क नामक ब्राह्मण का विश्विल नामक दामाद ग्रीकवासियों की विशेष कृपा से ही जानता था। राजा को उसको ढूंढने का आदेश दिया- विश्विल जो एक बार वह श्वसुर के घर

आया सभी प्रसन्न हुये। राजा ने पुक्वस्क को बुलवाया और कहा मनु ने अपने दामाद को आकाशयान बनाना सिखा दिया में भी इस यान के बारे में जानना चाहता हूँ। पुंक्वस्क ने कहा- मेंने नहीं सिखाया उसने स्वयं ग्रीकवासियों की कृपा से यह विद्या सीखा है। उसने विश्विल को बुलवाया और सामान देकर आकाश यान बनाने का आदेश दिया। थोडे दिनमें वह गरूड पक्षी के आकार का यान बनकर तैयार हो गया। इसके पश्चात् उसे मन्दार पुष्पों से सजाकर उसमें नागरिकों के साथ बैठकर इच्छित दिशा में घूमने लगे। मार्ग में राजा उदयन ने प्रद्योत के सामने प्रणाम के लिये एक तीर फेंका और वहाॅ उतरे अवन्ति और कौशाम्बी देश के निवासीजल महोत्सव कोछोड इस आश्चर्य जनक यान को देखने लगे। वहाँ कुछ देर तक रूक जाने के पश्चात् वह आकाश यान से उड़ गये। एक बार राजा ने एक अपनी प्रभा मण्डल की तीव्र रूप से चमक वाली देवी को देखा। उसने राजा से कहा मैं आपके द्वारा पूँजी गयी हूँ अपनी सेवा का फल चाहते हो। इसलिये जो में कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो- में मुद्रा नाम की यक्षिणी हूँ जो राजा कुबेर की सेविका हूँ। एक बार आकाश मार्ग से जाते हुये एक हाथियों के झुण्ड को अपनी पत्नी के साथ सुगन्धित मद जल से स्नान करते हुये देखा। यह सब देखकर राजा भी प्रिय हाथिनी मेरे सौन्दर्य से घृणा करने लगे। धनाधिप कुबेर को चाबुक प्रहार करके शाप दे दिया कि में अवन्ति राज्य की हाथी हो जाऊॅ इस प्रकार में वही भद्रा देवी हूँ और आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। भविष्य में भावी सम्राट पर जो संकट आयेगा उससे मुक्ति दिलायेगा।

षष्ठसर्ग

इसके पश्चात् वसन्तमास में रानी ने पुत्र को जन्म दिया। यह समाचार सुनकर पूरी प्रजा हर्ष और उल्लास में डूब गयी। उसी दिन उनके मन्त्रियों की पत्नियों ने भी कुछ समय के अन्तराल पर पुत्र को जन्म दिया। ये सभी राजकुमार से छोटे थे। जातकर्म के पश्चात सभी ने अपने-अपने पुत्र का नामकरण संस्कार किया। राजा ने अपने पुत्र का नाम नरवाहनदत्त रखा और अन्य मन्त्रियो रूमण्वन में हरिशिखा और यौगन्धरायण ने मरूभूति श्रृषभ ने गोमुख और तपन्तक ने अपने पुत्र का नाम तपन्तक रखा। इन सभी ने एक साथ शिक्षा-दीक्षा ग्रहण किया

और शीघ्र ही अनुष्ठानिक दीक्षा संस्कार से पूर्व ही सभी कलाओं, साहित्य और ज्ञान की सभी शाखाओं में निपुण हो गये। इस प्रकार राजकुमार नरवाहनदत्त युवा हो गये तो उनका राजतिलक कर दिया।

सप्तम सर्ग

इसके पश्चात् एक पवित्र दिन निश्चित करके दरबारियों से परामर्श लेकर नरवाहनदत्त का राजतिलक किया। राजतिलक के पश्चात् कुमार नरवाहनदत्त को नगर में भ्रमण कराया गया, सभी नगर वासियों ने प्रसन्नता पूर्वक उन पर पुष्प वर्षा की।

इसके पश्चात् राजकुमार अपने हरिशिखा आदि मित्रों के साथ क्रीडा करते हुए एक वर्ष व्यतीत किया। कुछ दिन बीतने पर एक दिन रात्रि भोजन पर एक दिन गोमुख नहीं आया तो कुमार चिचित हुए, गोमुख के बिना उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगा। हरिशिखा से कहा- गोमुख कहां है पता लगाओ, वापस आकर बताया कि गोमुख पागल हो गया है, राजा अत्यन्त चिन्तित हुए और इसकी सत्यता का पता लगाने को मरूभूतिक को कहा। भरूभूतिक ने भी वापस आकर बताया- वह (गोमुख) अजीब- अजीब हरकतें करता है- कभी अपना मुख शीशे में देखकर सर हिलाता है तो कभी तेजी से हंसता है, हंसने से कभी उसकी आंखों में आंसू भर आते है। इस प्रकार उसकी बहुत चिन्तनीय दशा है। शीघ्र ही उसे किसी कुशल चिकित्सक को दिखाओं आशा करता हूँ कि उसका पागलपन शीघ्र ही ठीक हो जायेगा एक बार राज्यकार्य हेतु राजकुमार के सभा में चले जाने पर रूमण्वन ने निवेदन किया। महाराज इस नगर में एक सुन्दर महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है इसे ' नागवनयात्रामहोत्सव' भी कहा जाता है। यदि आप सभी इस महोत्सव में निःशंक होकर जाइये ।

इस पर मरूभूतिक ने कहा- मित्रों से परामर्श कर बताऊंगा तब रूमण्वन दुःखी हुआ और कहा- आपके अच्छे व्यवहार के कारण ही में परम्परागत दास बना लिया गया हूँ। यह आप स्वयं सोचिए- आप जाने के पक्ष में हैं अथवा नहीं क्योंकि खाली दुर्ग पड़ोसी राजा द्वारा कब्जा किया जा सकता है। मरूभूतिक, तपन्तक और हरिशिखा ने भी यही सलाह दिया। हमें दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया है। नियुक्त करते समय महाराज ने ये भी नहीं

सोचा कि कुमार अभी युवा है, उन्हें मनोरञ्जन करने देना चाहिए। आप चिन्ता मत करिये आप सभी राज्य के भव्य नागवन यात्रा महोत्सव देखने के लिये जाइये।

अष्टम सर्ग

इसके पश्चात् सभी तैयार होकर उत्सव यात्रा के लिये गये। उत्सव यात्रा में बहुत से दूसरे देशों से नागरिक आये थे। आप सभी अत्यन्त भव्य महोत्सव का भरपूर मनोरञ्जन किये और यात्री गृह में विश्राम किया। प्रातः काल पुनः मित्रवर्गों के साथ विभिन्न क्रीड़ा आदि में दिन व्यतीत किया। प्रातः काल हम शिकार खेलने के लिये वन गये वहाँ पर प्रतीक्षा कर रहे थे तभी सिंहशत्रु नाम बनाधिपति आये। सिंहशत्रु ने राजकुमार को वस्त्रादि उपहार स्वरूप प्रदान किया सिंहशत्रु के साथ शिकार की खोज में इधर- उधर टहलने लगे। कुछ समय पश्चात् वे मार्ग के थकान के कारण उत्साहीन हो गये। उन्होंने कहा- यदि आपने किसी हिरन को देखा हो तो बताइये। वे हिरन की खोज में इधर -उधर टहलने लगे और थककर एक स्थान पर बैठ गये। राजा ने कहा- में किसी को नहीं मार सकता। इसके पश्चात् उन्होंने चक्रवर्ति चिन्ह एक ऐसे तीर की पूजा की जो प्रदक्षिणा करके वापस आ जाता था।

नवम् सर्ग

इसके पश्चात् गोमुख कमल पत्र पर एक मदान्ध कपोल वाली नायिका का चित्र खीचनें लगा और उस पत्र को नदी के जल में तैरा दिया, थोड़ी ही देर में देखा कि इस पत्ती पर पानी मोतियों की तरह आ गई। नदी के तट पर गोमुख ने चौदह करोड़ चरण चिन्हों को देखा और कहा कि ये चरण चिन्ह किसके है। इनका अनुक्रम आश्चर्य जनक है, निश्चय ही ये दैवीय होगें। सभी इन दैवीय चरण चिन्हों को देखने लगे बड़ी मुश्किल से अंगूठा या एडी का भाग दिखायी दे रहा था। इन चरण चिन्हों का अनुसरण करने लगे इस प्रकार एक स्थान पर घेरा डालकर ठहर गये। तभी अचानक कोई लौह पञ्जों से घायल व्यक्ति आया और चेतना हीन हो गया। कुमार नरवाहनदत्त ने पञ्चऔषधि और व्रणसरोहिणी नामक औषधि के शल्य क्रिया द्वारा उसका उपचार करके उसे पुर्नजीवन प्रदान किया। होश में आने पर उसने राजकुमार के दर्शन की इच्छा जाग्रत की। राजा के दर्शन के लिये घुटने टेक

और कहा- में कौशिक मुनि का पुत्र अमृतगति हूँ, सभी ने उनका सम्मान किया और राजा के सामने ले गये। अमृतगति साफ और नम्र व्यक्ति है, अमृतगति ने कहा– यह नम्रता से अलग नहीं हो सकते। यह बहुत लम्बी कथा है सुनिये–

जलमग्न पर्वत चोटियों के मध्य कौशिक नाम के मुनि रहते थे जो कि पत्थर और सोने में कोई भेद नहीं समझते थे। बिन्दुमतिनाम की कन्या स्वर्ग को छोड़कर आयी और बड़े उत्साह के साथ कौशिक मुनि की आराधना की कौशिक मुनि ने प्रसन्न होकर उसे वरदान मांगने को कहा- उसने कहा यदि आप प्रसन्न है तो मुझे सन्तान प्राप्ति का वर दें। तब उन्होंने दो संतान प्राप्ति का वरदान दिया उसी वरदान के फलस्वरूप में और मेरी बहन एक नाम राशि वाले है। हमारा पालन पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा उन्होंने ही दी । शीघ्र ही मैं सभी विद्याओं को धारण करने वाला हो गया। मैंने पूँछा मैंरा मालिक कौन होगा- भावी चक्रवर्ति सम्राट की पहचान पूँछा- मुनि ने कहा जो शत्रुओं द्वारा लौह पुञ्जों से काट लिये जाओगे जिसके द्वारा बचाये जाओगे वही तुम्हारा मालिक होगा। अतएव यही हमारे मालिक है तब अंगारक अपने भाई पालक के साथ अपने मित्र के पास आया। प्रसन्नता पूर्वक समय व्यतीत किया। मैं उनके साथ कश्यपस्थल नाम के राजा के यहाँ आया उस नगर में कुसुमालिका का हृदय जीत कर लज्जा युक्त कामवासना में डूबा हुआ घूमता रहा। एक दिन छोटे भाई के साथ देखकर आश्चर्य चकित हुआ कि यह यहाँ कहा जा रहा है दूसरे दिन उसे साथ लेकर नदी तट पर उतरा और आनन्द के लिये अनुकूल स्थल में प्रवेश किया। इसके अतिरिक्त सब घटनायें गोमुख से सम्बन्धित है।

दशम सर्ग:

इसके पश्चात् रूमण्वन उत्सव यात्रा में भोजन के शिविर में जाने को तैयार हुए । गोमुख हरिशिखा आदि सभी अपने-अपने रथ से उत्सव यात्रा में जाने को तैयार हुए। कुमार नरवाहनदत्त ने उत्सव में बहुत सी बालाओं को घूमते हुए देखा उनमें से किसी एक में आसक्त हो गये। सभी मित्रों ने मजाक किया और पूँछा राजन! ऐसी कौन सी कन्या रूपी

मक्खी है जो हमारे युवा स्वामी के रस को चूसना चाहती है। इसके पश्चात् गोमुख प्रसन्नता से रमणीय कथा को कहा-

मैं जब युवराज पद से विभूषित किये गये राजा के अन्तः पुर में गया और दोनों रानियों को प्रणाम किया। रानी पद्मावती से पूँछा महारानी आप ऐसी कौन सी तीन चीजे देख रही है। रानी ने कहा- कौन सी तीन चीजें, आपकी सम्पत्ति, शिल्पियों का कौशल, पृथ्वी की रत्न सम्पन्नता। गोमुख ने कहा- निश्चय ही संवेदनशील है- तब कैसे असंवेदनशील की तरह बात कर रहा है। इस तरह सन्देह होने पर भी नहीं पूँछा- बिना पूछे कौन बताता। इसके पश्चात् सभी घोड़ो पर और रथों से घूमने गये मार्ग में एक सेवक को मधुर शब्दों में गुनगुनाते हुए हाथी की सेवा करते सुना- रथ मैं बैठे हुए सारथी ने कहा अपने हाथी को मार्ग से एक तरफ करिये। महावत ने रथ को दूसरे मार्ग से ले जाने को कहा। इसके पश्चात् कहीं पर अपनी वक्राकार ऊंगलियों से ग्राम्य पुरुषको बांसुरी बजाते हुए सुना- इस प्रकार मैंने मार्ग में दूसरे स्थान पर कुछ कन्याओं को अध्ययन करते हुए देखा, उत्सुकतावश सुनना चाहा कि किस पुस्तक का अध्ययन कर रही है। इसके पश्चात् हरिशिखा और दूसरों के बारे में पूछने पर गोमुख ने कहा सब कुशल है, उसने मुझसे कहा- मैं अपनी समझ के अनुसार शिक्षा की सभी शाखाओं को सीखने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी परन्तु किस विद्या में विशेष दक्षता प्राप्त की है। हरिशिखा औरों से बढ़कर दण्डनीतिज्ञ, मरूभूतिक शास्त्रों में और तपन्तक रथ और दूसरे वाहनों को चलाने में अच्छा कौशल प्राप्त था। सभी शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करते समय रात्रि के चौथे पहर उठ जाते थे, स्नानादि कार्य से निवृत्त होने के पश्चात् मङ्गलकारक आभूषण धारण करने के पश्चात् हम इतिहास पढ़ते थे, वैद्यों की सलाह के अनुसार तेल आदि शरीर में लगाने के पश्चात् सभी आपस में अभ्यास करते थे।

एक बार अभ्यास के पश्चात् हम विश्राम कर रहे थे। तभी एक कन्या आयी और बगल में बैठ गयी। आर्यपुत्र भी यात्रा की थकान के कारण लेट गये वह कन्या पाद स्थान पर खड़े होकर पैर की मालिश किसे करना चाहिए यह कहकर मालिश करने लगी। धीरे-धीरे उस कन्या ने मेरे मन को अपने वश में कर लिया। इस प्रकार उसकी निर्लज्जता देखा कन्या

ने निश्चय ही विचेष्टा किया, उसने मेरे विचार जान लिये मैंने सोचा - निश्चय ही यह कोई देवी है जिसे इतना ज्ञान है तभी दूसरों के मस्तिष्क को पढ़ सकती है। इसके पश्चात् कांपते हुए वक्षस्थल को अपने हाथों से मालिश करने लगी इसके पश्चात् उस घर से बाहर आया। उसे प्रणाम करने के पश्चात् मैं जाने ही वाला था तभी उसने कहा - यह आपका घर है यह हमैंशा ही आपके द्वारा देखा जाता है, सर्प भी समय आने पर मित्र हो जाता है। इसके पश्चात् में रानी पद्मावती के पास वापस आ गया। वहाँ उस कन्या ने मेरी अनुपस्थिति में खाना पीना सब छोड़ दिया। दूसरे दिन मरूभूतिक भी मुझ पर हस रहा था। मैं पुनः उस आर्य पुत्री के पास वापस गया और पाया कि उसके नेत्रों से अत्यधिक आंसू गिरे है और दुःख से आवाज मंद हो गयी है।उसे स्तम्भ के पीछे सिसकते हुए पाया।रोते हुए उसने कहा- भाग्यशाली है पद्मदेविका जिसने आपका सहारा पाया है। मेरे दुःख का कोई कारण नहीं है। आप स्वामिनी का ध्यान रखिये शोक संतप्तता के भय से उसकी रक्षा करिये। इसके पश्चात् नरवाहनदत्त चले गये। मुद्रिकालतिका नाम की सेविका अपनी मां की गोद में सर रखे हुए नरवाहनदत्त का स्मरण कर रही थी। गोमुख उसने वार्तालाप सुनने के योग्य था उसे उस स्थान से दूर ले जाकर मुद्रिकालतिका ने कथा सुनाना प्रारम्भ किया- भरत नाम के एक राजा थे, उन्होंने एक ही समय में तीन वर्गो कर्तव्य, धन और आनन्द में सिद्दि प्राप्त कर ली थी।

एक बार उन्होंने राजकन्या को समुद्र से निकाला और उससे विवाह करना चाहते थे। और एक समय मैं नित्य जीवन के आनन्द का अनुभव करना चाहते थे और एक समय में नित्य जीवन के आनन्द का अनुभव करना चाहते है। इसके पश्चात् राजा ने सेनापति को प्रत्येक आठों समूह को पहनने के लिये आभूषण छत्र–चामर लाने का आदेश दिया। महागणिका ने राजा से नाम पाया है। उस महागणिका ने एक कन्या को जन्म दिया जिसका नाम मदनमञ्जुका रखा। थोड़ा बड़ी होने पर एक बार उसकी मां जब राजकुल जा रही थी तो स्वयं भी जाने को जिद्द करने लगी। मां अपनी प्रिय पुत्री की इच्छा न टाल सकी और आभूषण आदि पहनाकर अपने साथ राज-सभा में ले गयी। वहाँ से वापस आने पर वह बहुत खुश थी। हर समय राजा के सभा के विषय में ही बात करती थी। दूसरे दिन पुनः वह स्वयं बड़ी सावधानी से राजमहल जाने के लिये तैयार होने लगी और जब मां जाने लगी तो वह

स्वयं भी पीछे-पीछे जाने लगी। माँ ने उसे समझाया और रोका। वह उसे दुर्घटना मानकर वापस आई और रोने लगी। मित्रों को अकारण ही वापस भेज दिया इस प्रकार मैंने उसे खिड़की के पीछे खड़ा हुआ श्रृङ्गार करने में तल्लीन देखा, इसके उपरान्त राजदरबार की ओर मुख घुमाकर अभिवादन कर कहा अगले जन्म में आप मेरी ही वरण करें। इसके पश्चात् पर्दे के साथ सरकने वाला, फंदा बनाया अपने गर्दन में डालकर लटक गयी, उसे तुरन्त दौड़कर मृत्यु देवता के फंदे से मुक्त किया, होश में लाने के लिये जल छिड़का। होश में आने पर वह चिल्लाई मैं इस जीवन को त्याग रही थी, किसने मुझे सर्वदुःखों से उत्पन्न जीवन को बचाया। इस प्रकार वह लगातार बोल रही थी। राजबारी ने दुःख का कारण पूँछा और उसे दूर करने का उपाय पूँछा। वह राजदरबारी महल आयी और सब बताया कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर एक बार उचित मौका देखकर नरवाहनदत्त से मुद्रिकालतिका ने कहा- क्यों इस निर्दोष मुग्धा कन्या को पत्र और पुष्प और फलादि के द्वारा छल किया है, क्या आप निवृत्त हो गये, मेरे पास विरक्ति के लिये बहुत से फंदे है कठोर शब्दों में डांटने पर उसने कहा- समय की प्रतीक्षा करिये परिणाम ही आपको विश्वास दिलायेगा। रथ में हरिशिखा ने कहा- वही यह मदनमञ्जुका स्त्री आपसे प्रेम करती है। उसे सर्प ने काट लिया बहुत समय तक इन्तजार नही कर सकती कृपया उस पर शीघ्र ध्यान दें। यह कथा गोमुख से सुनकर 19 वर्षीय नरवाहनदत्त की लज्जा खो चुकी थी, उनकी इस प्रकार सोचते हुए थकान रहित प्यास से व्याकुल किसी तरह रात्रि व्यतीत किया।

एकादश सर्ग

गोमुख दो नर्तक आचार्यों को सामने लाया कहा कि आप जिसे भी देखना चाहे आज्ञा दें। राजा ने कहा आप नृत्य, संगीत और ऐसी कलाओं में कुशल है जिसे आप कहे उसे नृत्य करवाये, जब दो नर्तकियाँ गोमुख के पास आयी सुयामुन्दा ने अपने गुरू का नाम लिया और नृत्य किया नृत्य देखकर नृतक आचार्य प्रसन्न हुए। उसके साथ–साथ उसके साथ स्वर्ग की रम्भा और मैंनका नाम की अप्सरायें भी साथ-साथ चलने में सर्मथ नहीं है। इसके पश्चात् राजा ने अपनी दुःखित प्रेमिका मदनमञ्जुका को देखा तो उसके पास गोमुख को भेजना चाहा परन्तु गोमुख ने कहा आप मुझ पर विश्वास मत करें आप जैसा व्यक्ति मेरे जैसे व्यक्तियों का

सम्मान नहीं करते, वह मेरे द्वारा छली गयी है। आप मरूभूति को उसके पास भेजे वह जाकर वापस आया और मुख दूसरी ओर घुमा लिया। इस पर मैंने सोचा देवि अकारण ही कुपित है मेरे जैसे सेवक कैसे हो सकते है, ये अकारण क्रोध कैसा है? कान्ता के लिये खुशी लाये हैं अथवा कोई कारण है। आर्यपुत्र ने उसे ध्यान से देखकर उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। हमारी स्वामिनी के नृत्य करने पर क्या राजा प्रसन्न थे। उसके गुणों को देखकर लोगों ने कहा -राजा मदनमञ्जुका को देखकर पक्षपात कर रहें हैं यदि पहले दूसरे नर्तकियों का नृत्य करते देखते है। इस प्रकार उर्वशी का भी तिरस्कार करके मदनमञ्जुका से बात न करते उसे प्रेम से देख रहे थे तो उसका ध्यान भंग हो गया। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि स्वयं भी नृत्य करें तो सुयानुदत्ता को हराना सम्भव नहीं है। इसलिये वह सम्मान पाने योग्य है उसे सम्मान दीजिये। इसके पश्चात् सभी की सहमति से गोमुख कलिंग सेना पुत्री मदनमञ्जुका को ले आया। कुमार नरवाहनदत्त के कक्ष में तपन्तक को याद दिलाया गोमुख से कार्य सिद्धि के लिये कहा- इस पर तपन्तक जोर से हंसा और बिना रूके माला, फल आदि ले आया। गोमुख ने मदनमञ्जुका और कुमार नरवाहनदत्त का विधि पूर्वक विवाह करवाया। इस प्रकार नरवाहनदत्त ने अपनी प्रिया के शारीरिक उपस्थिति में दिन व्यतीत किया।

द्वादश सर्ग

इसके पश्चात् एक दिन प्रातः काल जब मैंनें अपने सभी कार्य पूरा कर लिया तो गोमुख हारे हुए जुआरी की तरह मुझसे बोला। इसके पश्चात् जब मैं अन्तःपुर गया तब वह भी रानियों को प्रणाम करने के लिये अन्तःपुर गया इस पर रानी पद्मावती ने हंसकर कहा- हमारा दमाद किस कारण से अभी तक प्रणाम करने नहीं आया वह किस कारण कुपित है। इसके पश्चात् वह अन्दर स्वामिनी मदनमञ्जुका के कक्ष में ले गयी वहाँ वह नहीं थी वह बाहर आई और छाती पीटकर विलाप करने लगी। मदनमञ्जुका को वहाँ न पाकर राजा और अन्तःपुर ने अपना धैर्य खो दिया है। वह निश्चय ही मानसवेग द्वारा अपहृत कर ली गयी है। राजा ने गोमुख को बुलाया। मार्ग में कहा — कहां नीति कुशलता में कमी थी जो हमारी रानी को बलपूर्वक खींच ले गया। इस पर मरूभूतिक ने कथा सुनायी।

अष्टावक्र नाम के एक ऋषि थे उनके सावित्री नाम की एक पुत्री थी जो आकार और छाया में गायत्री देवी के समान थी अष्टावक्र ऋषि ने एक बारअपनी पुत्री का विवाह अंगीरस के साथ करने का निश्चय किया परन्तु उनकी सगाई पहले ही दूसरे से हो चुकी थी। अष्टावक्र के वृष नाम के भाई था। उसने अंगीरस से कहा मेरे अमृता नाम की पुत्री है कृपया आप उसे स्वीकार करिये, आपसे उत्तम वर इस संसार में कोई नहीं है- शीघ्र ही वह अमृता से विवाह के लिये तैयार हो गये। एक बार जब वह अत्यन्त दुःखी थी अपने पति से कहा- आप प्रथम दृष्टि से ही सावित्री में आसक्त थे मैं तो आप पर बलपूर्वक लादी दी गयी हूँ। इस पर अंगीरस ने अमृता को कई तरह से आश्वस्त किया। सूर्य अस्त होने पर जब ऋषिगण ध्यानकर रहे थे अमृता आयी और कहा-आप किसका ध्यान कर रहे हैं? संध्याकालीन आराधना समाप्त करने के पश्चात् ऋषि ने उत्तर दिया- मैं देवी सावित्री की आराधना कर रहा था। यह सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई। अन्दर जाकर ईश्वर को प्रणाम किया और स्वयं को वृक्ष से लटका दिया और शीघ्र ही वह लटकी हुई गर्दन वाली हो गयी। एक देवी ने कहा- वह (अष्टावक्र ऋषि) स्वयं अमृत से सिञ्चित हैं पुत्री ! तुम्हें स्त्री सुलभ अज्ञानता के कारण अपना जीवन नहीं त्यागना चाहिए। वह अष्टावक्र पुत्री सावित्री के विषय में नहीं सोचते - बल्कि वह मेरे अर्थात् सात लोगों की देवी के विषय में सोचते हैं। तुम जाओं और शीघ्र ही एकपुत्र प्राप्त करोगी। देवी सावित्री से यह वर प्राप्त कर वह वापस आयी। उसकी सब शंका समाप्त हो चुकी थी। अब वह अपने पति के साथ प्रसन्नता पूर्वक रहने लगी। अंगीरस ऋषि ने सोचा यह मोह संकल्प है भगवान कामदेव के मस्तिष्क के जन्म रति के अतिरिक्त किसी की कल्पना भी नहीं ले सकते और राजा ने वन में पशुपक्षियों से अपनी प्रिया मदनमञ्जुका के विषय में पूँछा। कुछ समय बाद मरूभूतिक ने प्रसन्नता पूर्वक कहा आर्य पुत्री को मैंनें देखा इस पर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए शीघ्र ही गोमुख की सहायता आर्य पुत्री को मानसवेग के कैद से मुक्त कराया और शीघ्र पुनः पत्नी रूप मैं सम्मान दिया।

त्रयोदश सर्गः

राजा नरवाहनदत्त ने अपनी प्रिया के माता के घर में ही कुछ दिन व्यतीत किया। इसके पश्चात् बड़ों का आर्शीर्वाद लेकर अपने महल वापस आया। वहाँ पुष्पों से धन के स्वामी

कुबेर की पूजा की इसके पश्चात् पद्मराग पेय पदार्थ की तरह मदिरा पान किया। पुनः प्रिया रानी से पूँछा - इसका स्वाद कैसा है? राजा ने कहा- जब में एक प्याला पीता हूँ तो इसका स्वाद मीठा लगता है बाद में कषैला और अन्त में कड़ुआ हो जाता है और अन्त में सभी स्वाद नष्ट हो जाता है रानी ने कहा- तब आप मदिरा का स्वाद नहीं जानते पुनः एक प्याला पिलाया। राजा ने सभी वृक्ष, महल और पर्वतादि स्थावर जंगल आदि सभी बहुत तेजी से घूमने लगे। प्रातः काल हरिशिखा ने राजा से कहा- इस महल में कहीं से मदिरा की गन्ध आ रही है, में मानता हूँ कि आपने अनिच्छा से पिया आपकी आवाज से लग रहा है कि आपने मदिरा पान किया है । हरिशिखा मरूभूतिक ने भी पीना प्रारम्भ कर दिया। नशे में रानी को सामने देखकर चिल्लाने लगा। एक बार जब रानी मदनमञ्जुका शैय्या पर थी अचानक मध्य रात्रि मैं जग गया सोचा कि यह कौन है यह मदनमञ्जुका नहीं हो सकती, यह दूसरी विद्याधरी यहाँ कैसे पहुंची इस प्रकार अपने दोनों हाथों से उसके चरण दबाने लगा। दबाये जाने की पीड़ा से वह उठ बैठी और आर्यपुत्र को इस प्रकार प्रमादी की तरह व्यहार करते देख कर कहा- आप हमारे आदरणीय है यह क्या कर रहे है? इस पर वह भी लज्जित हुए। मदनमञ्जुका ने लज्जा दूर करते हुए कहा- आर्यपुत्र दुःखद समाचार सुनिये आपकी प्रिया मदनमञ्जुका भी आपके गुणों को स्मरण करते हुए व्यग्रता से अपने दिन व्यतीत कर रही है।

चतुदर्श सर्ग-

इसके पश्चात् रानी मदनमञ्जुका का नाम लिये जाने पर ब्राह्मण ने कथा सुनाना प्रारम्भ किया- मेरूगिरी का नाम विशाल पर्वत पर विद्याधरों के स्वामी वेगवान का निवास था। उनके पृथिवी नाम की रानी थी। वे पुत्र न होने के कारण अत्यन्त दुःखी था, उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये देवी मनःपुत्रिका की आराधना की। उन्हीं के आर्शीर्वाद के फलस्वरूप एक पुत्र मानसवेग की प्राप्ति हुयी इसके तीन वर्ष पश्चात् एक पुत्री प्राप्त किया जिसका नाम उन्होंने वेगवती रखा। वे पुत्र प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दिन रात को समान मानकर व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात् राजा वेगवान जिसके सांसारिक सुख समाप्त हो चुके थे। प्रजा के करूण रूदन करती हुयी पुत्री को छोड़कर, समस्त सुख को तृण के समान मानकर तपोवन तपस्या करने के लिये चले गये।

एक बार वेगवती की सखियों ने कहा- आओ पर्वत कुञ्जों में क्रीड़ा करें और आकाश मार्ग से विचरण करें इस पर वेगवती नेकहा- मुझे आकाश मार्ग से चलने की शक्ति नहीं प्राप्त है। इस पर वेगवती की सखियों उसका उपहास उड़ाया। इस पर अत्यन्त दुःखी हुई और रोते हुए अपने भाई मानसवेग के पास आयी और कहा— आप मुझे आकाश मार्ग से चलने का जादुई मन्त्र दीजिये। इस पर मानसवेग ने कहा- मैं तुम्हे यह ज्ञान दूंगा अकारण ही इतनी शीघ्रता क्यों कर रही हो। इस पर वह अत्यन्त दुःखी हुई और तेजी से अपनी मां की गोद में जाकर ऐसे गिर पड़ी जैसे गर्मी से संतप्त हाथी तालाब में गिर पड़ता है और रोने लगी। इसपर रानी पृथ्वी ने उसे उनके पास ले जाने को कहा मन्त्रिगण कन्या वेगवती को लेकर तपोवन राजा वेगवान के पास गये। वहाँ पर राजा वेगवान ने मंत्रियों से वेगवती को साथ लाने का कारण पूँछा। इस पर मंत्रियो ने बताया- रानी पृथिवी ने यहाँ आपसे आकाश मार्ग से चलने का जादुई मंत्र सीखने के लिये भेजा है। कृपया इसे आप सिखाइये।

इस पर राजा वेगवान ने कहा- आप सब जाइये यह जादुई मंत्र यहाँ से सीख कर जायेगी। वह वहाँ रहकर ऋषियों की सेवा करने लगी। काफी समय बीतने के पश्चात् ऋषि कुमारों ने कहा- राजकुमारी की सेवा से हम अत्यन्त प्रसन्न है, आप उसे ज्ञान दीजिये। इसके पश्चात् ऋषिकुमारों ने कहा- राजपुत्री की सेवा से हम सभी प्रसन्न है। आप उसे आकाश मार्ग से चलने का जादुई मंत्र का ज्ञान उसे दे दीजिये। इसे पश्चात् राजा वेगवान ने उसे आकाश मार्ग से चलने का जादुई ज्ञान दिया। सीखने के पश्चात् राजावेगवान ऋषिगण और ऋषिकुमारों से आज्ञा लेकर आकाश मार्ग से उड़ गई। माता के पास महल वापस गई।

एक बार मानसवेग आकाश मार्ग से विचरण करते हुए- साक्षात् सौन्दर्य की मूर्ति स्वरूप कन्या को बलपूर्वक भोग करना चाहा। इस पर उस कन्या ने क्रोध से कहा- वेगवान पुत्र होने के कारण तुम्हें माफ किया जा रहा है अन्यथा तुम्हे जला देना चाहिए परन्तु तुम पुनः ऐसा न कर सको इसके लिये तुम्हें शाप देती हूँ अनिच्छुक स्त्रियों की तरफ देखते ही तुम्हारे सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इस प्रकार शाप के भय से वह किसी कामिनी कन्या को नहीं देख सकता है- इसलिये मानसवेग ने कहा- मदनमञ्जुका को कहो कि वह मुझसे वार्ता

करे। इस प्रकार मानसवेंग तरह-तरह से अपने गुणों का वर्णन करके मदनमञ्जुका को अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगा। फिर भी मदनमञ्जुका ने अपने पति के अतिरिक्त किसी पर भी ध्यान नहीं दिया। मानसवेग ने दूत भेजा- दूतिका ने भी मानसवेग की आज्ञा का पालन किया और यह भी कहा- विद्याधर के अतिरिक्त कोई भी महान नहीं है। में आपकी बहन के समान हूँ। अधिक संतप्त होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे जीवन की रक्षा करूंगी। इसके पश्चात् मानसवेग द्वारा रानी मदनमञ्जुका हरण कर ली गयी।

पञ्चदश सर्ग

प्रातःकाल हरिशिखा वहाँ पहुंचकर राजा को प्रणाम किया वेगवान पुत्री वेगवती को प्रणाम नहीं किया, गोमुख भी शीघ्रही वहाँ पहुंचकर सर्वप्रथम मुझे प्रणाम किया इसके पश्चात् वेगवान पुत्री वेगवती को प्रणाम किया। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर एक दिन राजा विद्याधर ने प्रातःकाल ही सेनापति को बुलाया और कहा- महाराज ! हमने कभी भी वरवधू का विवाह उत्सव नहीं देखा है इसलिये कृपया आप कुमार नरवाहनदत्त का विवाह वेगवान पुत्री वेगवती से कर दें। इस पर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दी। सभी ने शादी की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। शीघ्र ही धूम-धाम से विवाह सम्पन्न हुआ इसके पश्चात् राजा गोमुख, मरूभूतिक, तपन्तक के साथ क्रीड़ा करते प्रसन्नता के साथ दिन व्यतीत करने लगा। एक बार किसी कारणवश रानी क्रोधित होकर दूर खो गयी। राजा भी प्रगाढ़ निद्रा में सो गये अचानक नेत्र खोला और पाया कि कोई आकाशमार्ग से उन्हें ले जा रहा है। वह समझ गये कि निश्चय ही कोई गन्धर्व या पिचाश दूर ले जा रहा है। वो स्पर्श देवता नहीं थे। वह र्स्पश से किसी दुष्ट बुद्धि वाला मुझसे दूर ले गया। वेगवती ने अपनी कुल देवी की आराधना की और प्रार्थना की कि मेरे पति की रक्षा कीरियेगा। एक बार वेगवान पुत्र मानसवेग और वेगवती मैं अचानक महायुद्ध छिड़ गया इस महायुद्ध को देखकर सभी आश्चर्य चकित हुए, एक क्षण तो पूरा आकाश ढ़क सा गया। इस युद्ध से अपनी दुर्दशा को सञ्जय की वाणी द्वारा याद किया। सञ्जय किसी तरह धृष्टद्युम्न से बचकर भाग आये। उस असम्भव कुंये से निकलने का उपाय सोचते हुए एक कथा याद आयी।

किसी ब्राह्मण के तीन भाई थे- एकत् द्वित, और त्रित। तीनों वेदाद्ध्ययन के पश्चात् गुरू को वाञ्छित दक्षिणा देना चाहते थे गुरू ने मना किया फिर भी उन्होंने जोर देकर दक्षिणा मांगने को कहा। अन्त मैं क्रोधित होकर गुरू ने-- गुरूदक्षिणा में एक हजार गाये जिनके धन घड़े की तरह हो, थन में प्रभूत मात्रा में दूध हो, जिसके कर्ण श्वेत हों और शरीर कोयल की तरह काला हो। तब वे पूरे विश्व में ऐसी गायों को खोजते हुए हिमालय पर्वत पर कुबेर के पास पहुंचे। कुबेर ने उनकी इच्छा जानकर एक दिशा में भेजा , वहाँ उन्होंने गायों को देखा जिन्हें लेकर वे वापस लौटने लगे । मार्ग में एक स्थान पर बहुत प्यासे हुए वे एक कुयें के पास गये जिसका पानी बहुत गहरा था। करूणा शील त्रित रस्सी की सहायता से कुयें के अन्दर गया और बहुत से बर्तनों में जल निकाला गायों और हजारों पथिकों को जल पिलाया परन्तु एकत् और द्वित दोनों ही त्रित को कुयें में ही छोड़कर चले गये वह बाहर निकलने के लिये चिल्लाता रहा। अन्त में वेद वृतान्त मैं निपुण त्रित ने प्रार्थना करके इन्द्र देवता को प्रसन्न किया। तीव्र वर्षा हुई जिससे कुए का पानी ऊपर आ गया वह बाहर निकल आया गायों के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए एक दिशा की तरफ जाने लगा मार्ग में ब्राह्मण से अपने भाइयों के विषय में पूँछा। इस पर ब्राह्मण ने कहा- तुम्हें ऐसे भाईयों के विषय में नहीं पूछना चाहिए। इस पर त्रित क्रुद्ध हुआ और कहा आप धिक्कार है- अच्छे व्यक्ति की निन्दा करने में विशारद् है, ज्ञान रूपी चन्द्र किरणें दूर हो आप जैसे ज्ञानी से ऐसी अपेक्षा नहीं थी इस पर ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए और वरदान मांगने को कहा- इस पर त्रित ने कहा- यदि मेरे बड़े भाइयों का दोष है तो फिर भी आप उन्हें मुक्त कर दें। पुनः प्रसन्न होकर कहा पुनः वरदान मांगने को कहा- इस पर त्रित ने कहा बड़े भाइयों को गुरू को गायें दे देना चाहिए पुनः प्रसन्न होकर ब्राह्मण ने वरदान मांगनें को कहा - अब बस मुझे कुछ नहीं चाहिए। इसके पश्चात् ब्राह्मण स्वर्ग वापस चला गया।

इस प्रकार अमितगति ने वेगवती जो अपने भाई के साथ युद्ध कर रही थी सहायता करने को कहा- जो आर्यपुत्री की सहायता करना चाहता हो वे वेगवती की रक्षा के लिये महागौरी को कहो- मैं झुककर उनकी पूजा नहीं कर सकता। नहीं अपना रक्त गिराकर आराधना ही कर सकता हूँ।

षोडश सर्ग

इसके पश्चात् अमितगति अपने हाथ में तलवार और कवच अपने हाथ में लेकर आकाश मार्ग में उड़ गया। घूमकर वन में गया। इसके पश्चात् वन्य जीवों से परिपूर्ण वन में गया, फिर फलों के उद्यान में गया। इसके बाद प्रथम से अधिक रमणीय उद्यान के तोरण द्वार पर पहुँचा तो द्वारपाल ने हमें रोका और कहा तुम यहाँ क्यों विचरण कर रहे हो यहाँ पर बिना मालिक की आज्ञा के नारद को भी प्रवेश नहीं करने देता हूँ तो आपको कैसे दे सकता हूँ। इसके पश्चात् गृह में प्रवेश किया वहाँ मैंनें देखा कि एक व्यक्ति शिलातल पर बैठकर वीणा बजा रहा था जिसकी ध्वनि अत्यन्त मधुर थी, जिसे पशु पक्षी सभी बड़े ध्यान से सुन रहे थे उसके वीणा में आसक्त चित्त वाले वीणा से ध्यान हटाकर मुझे देखा और शीघ्र ही उठकर मुझे शिलातल पर बैठाया और आतिथ्य सत्कार किया इसके पश्चात् पूँछा- यह कौन सा नगर है और आप कौन हैं, उन्होंने कहा यह चम्पा नाम की महानगरी है और में वीणा प्रेम के कारण वीणादत्तक के नाम से जाना जाता हूँ। और इस नगर का एक सम्मानीय व्यापारी हूँ। इसके पश्चात् वीणादत्त ने अंगूठी हाथ में लिया और उसे दिया रथ पर बैठा और सारथी से शीघ्र चलने को कहा-मार्ग में नगर द्वार के समीप एक स्थान पर इधर-उधर घूम रही गायों के झुण्ड के मध्य बीन बजाते सुना। एक कुमकुम खरीदने वाले दुकानदार से एक वीणा मांगा इस पर वह बड़ा आश्चर्य चकित हुआ। कुछ समय पश्चात् रथ से वीणादत्तक विशाल एवं सम्पन्न घर में पहुँचा। वीणादत्तक ने सभी को घर में एकत्र किया और परिचय कराया इसके पश्चात् मुझसे भोजन पूँछा। मैंने कहा- में ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मण घी, मक्खन, दूध और मिठाई ही खाता है। तब रसोइये ने मेरे लिये खीर बनाई और स्वर्ण के कटोरे में मेरे सामने लाया। जिसे शीघ्रता पूर्वक खाने के कारण मैंरा मुख जल गया। एक बार मालिश करने वाले के कक्ष से मदिरा की गंध आयी में जो कि अत्यन्त प्यासा था। इसलिये जो थोड़ा मदिरा के सदृश था में पी गया और विभिन्न प्रकार का मांस युक्त भोजन किया और दत्तक के साथ उठा। तदन्तर विशाल कक्ष में सुन्दर साफ पुष्प बिखरे शैय्या पर बैठा और वीणादत्तक से पूँछा- आप वीणा के प्रति इतना उन्मत क्यों है। इस पर वीणादत्तक ने बताया इस चम्पा नगरी के श्रेष्ठ व्यापारी सानुदास है जिसका सौन्दर्य तीनों लोको में उत्तम है। उसके गन्धर्वदेवता नाम की अत्यन्त

सुन्दर पुत्री है। वह अच्छा और गुणी युवा पुरुष उससे विवाह नहीं कर सकता।। वह उसी से विवाह करेगी जो वीणा पर गाते समय उसका साथ देगा इसलिये नगर में कोई ऐसा नहीं है जो वीणा के प्रति उन्मत्त न हो यहाँ पर तो वृद्ध व्यक्ति भी गन्ने की छड़ी लेकर वीणा का अभ्यास करते दिखायी देते हैं। आप भी आयोजित होने वाली प्रतियोगिता में हिस्सा लीजिये।

सप्तदश सर्ग

मैंनें (अमितगति) ने पूँछा- क्या गन्धर्वदेवता को देख सकता हूँ। इस पर वीणादत्तक ने कहा - जब तक कि संगीतज्ञ नहीं हो जाते तब तक नहीं देख सकते। उसे देखने के लिये संगीतज्ञ बनना पड़ेगा। इसके पश्चात् वीणादत्तक बहुत से संगीतशास्त्र के विद्वान विशेष रूप से वीणावादन आचार्यों को बुलाया। एक वीणा वादन में प्रवीण भूतिक नाम के गुरू आयें। उन्होंने क्रोधित होकर कहा- इसने मैंरा तिरस्कार किया है में इसको एक काकणी मात्र भी नहीं दिखाऊंगा। गुरू की शूश्रूषा से अथवा पुष्कल धनराशि से शिक्षा प्रारम्भ की जाती है। इस यक्षिणी कामुक को ठीक से वीणा पकड़ना भी अभी तक नहीं आया यह कभी भी वीणा बजाना नहीं सीख सकेगा। क्रोध शान्त होने के पश्चात् उस क्रोधी गुरू ने मुझे सातवें स्वर ग्राम आदि की शिक्षा दी, इसके पश्चात् नारदीय शिक्षादी। इस प्रका सीखते हुए वीणादत्तक के घर में रहते हुए कुछ समय बीतने पर एक दिन वीणादत्तक के घर में टंगी हुयी वीणा पर पड़ी? उसने वीणा उतार कर बजाया तो मानो जैसे आर्शीर्वाद से देवी! सरस्वती स्वयं वीणा के तार पर बैठी हो, उसे सुनकर मेरे कर्ण पवित्र हो गये और शीघ्र ही वीणा कपड़ो में लपेटकर कील से लटका दिया और सोने का बहाना किया। कुछ दिन पश्चात् गन्धर्वदेवता की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये गया। समुद्रसेन के निमन्त्रण पर सभी दूसरे 64 मित्र आये और शीघ्र ही गन्धर्वदेवता भी स्वयंवर में आयीं। एक के बाद एक सभी ने प्रतियोगिता में हिस्सा लिया परन्तु उनमें से कोई भी सफल नहीं हुआ। अन्त में मैंनें भी हिस्सा लिया और प्रतियोगिता में हिस्सा लिया मैंनें तीन वीणा बदलने के पश्चात् एक वीणा से नारदीय शिक्षा जिसे राजा विराट पुत्री उत्तरा द्वारा को अर्जुन द्वारा, राजा परीक्षित ने इसे अपनी माता प्राप्त किया इसके पश्चात् जनमेजय ने राजा परीक्षित से इस प्रकार पीढी दर पीढी मैंने इसे अपने पिता से प्राप्त किया। इसे गन्धर्वदेवता के सामने गाकर सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् वीणादत्तक के साथ में अन्दर ले जाया गया। अन्य सभी के चले जाने पर गन्धर्वदत्ता से विवाह करने को कहा और अग्निहोत्र के लिये ब्राह्मण बुलाये गये अन्य सभी ब्राह्मण जैन बौद्ध

भिक्षु, पशुपति, साधुओं, चिकित्सकों, वैद्यों, आदि को सूचित कर बुलाया गया और बहुत पवित्र दिन निश्चित कर गन्धर्वदत्ता के साथ पणिग्रहण कर दिया गया।

अष्टादश सर्गः

इसके पश्चात् में और गन्धर्व देवता वीणादत्तक के साथ कामदेव और रति की तरह जीवन व्यतीत करने लगा। एक बार सानुऋषि आये गन्धर्वदत्ता ने उनका अभिनन्दन किया। आसन लेने के बाद उन्होंने कहा- चम्पा में मित्रवर्मा नाम का प्रसिद्ध व्यापारी था, इस संसार में सभी उससे परिचित थे, उनके मृतवती नाम की पत्नी थी उनके कोई पुत्र नहीं था, पुत्र प्राप्ति के लिये तीन उपवास के पश्चात् ऋषि सानु को बुलाया और उनकी सेवा की, उन्होंने पुत्र प्राप्ति का आर्शीर्वाद दिया। शीघ्र ही उन दोनों को पुत्र प्राप्ति हुई एकमात्र पुत्र होने के कारण अत्यन्त प्रिय था। उसकी शिक्षा दीक्षा प्रारम्भ हुई। अत्यधिक विनयशील होने के कारण वह असमाजिक था। मित्रवर्मा और मृतवती के सानु ऋषि के आर्शीर्वाद से उत्पन्न सानुदास है और वही मैं हूँ सानुदास आज आपके सामने है।

मैं अपने मित्र ध्रुवक के साथ पत्नी के साथ घूमने गया। घूमने के पश्चात् हमने मदिरा पान किया । वहाँ पर हमने रोने की आवाज सुनी। कुछ दूर जाकर हमने माधवी की लताओं के मध्य जंगल की देवी की तरह एक स्त्री को देखा। मैंने उससे रोने का कारण पूँछा - उसने कहा आप ही मेरे असहनीय दुःख का कारण है। मेरा सर लज्जा से झुक गया और कहा यदि आपका दुःख मेरे कारण है तो रोइये मत, में इस कष्ट को दूर करने का प्रयास करूगां आप बताइये कि आप कौन है। उस कन्या ने कहा- में गंगादत्त नाम की यक्षिणी हूँ कामदेव ने मेरे हृदय मैं आपके प्रति प्रेम चला दिया। इसके पश्चात् वह मेरा हाथ पकड़कर एक भव्य महल ले गयी। वहाँ पर एक सुन्दर मोटी कन्या ने मेरा मत्था चूमकर स्वागत किया। इसके पश्चात् विश्राम के लिये एक विशाल कक्ष में ले गयी वहाँ पर प्रेम से मदिरापान कराया और शरीर पर अर्पित कर दिया। सानुदास पर कन्या ने सानुदास को अपने घर बुलाया और पिता के गुजर जाने का समाचार दिया इस पर सानुदास बहुत दुःखी हुआ। इस पर राजा विद्याधर ने कहा - में अब पिता के समान हूँ, तुम्हें अब कुल पुत्र की तरह

जीवन व्यतीत करना चाहिए कुछ समय बीत जाने के पश्चात् सानुदास ने उसके मित्र ध्रुवक ने दीनता पूर्वक कहा- आप दुःखी गंगादत्तक को आश्वासित करें।

इस पर सानुदास ने कहा- हमारे चञ्चल बाल्यकाल का समय बीत गया अब यहाँ समय परिवार की परेशानियों को दूर करने का है। में कैसे वेश्या की आसक्ति के साथ परिवार को जोड़ सकता हूँ। गंगादत्त की भी बाललीला का समय समाप्त हो गया है। वह भी अपनी दादी और माँ के मार्गो का अनुसरण करेंगी। इस पर ध्रुवक ने कहा – यह आपके परिवार प्रेम के कारण मना करने योग्य है। परन्तु किसी टूटी हुयी वेश्या के लिये यह दुःख सहना मुश्किल है। गलत होने पर भी ध्रुवक के मना करने पर भी गंगादत्त के घर गया ओर उसके प्रति प्रेम का अनुभव किया। गंगादत्तक की माता ने कहा– पुत्र अपने दुःख को भूल जाओ और इस मदिरा पान द्वारा अपनी प्यास बुझाओ । मैंनें जैसे-जैसे मदिरा पान किया वैसे-वैसे मैंरा दुःख समाप्त हो गया। इस प्रकार मदिरा में लीन होकर अपने दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार काफी समय बीत जाने के पश्चात् एक बार में जब अपने घर के द्वार पर पहुँचा तो उसने मुझे रोका। पुनः पहचान कर कहा आपकी माता जीवित होते हुए भी जीवित नहीं है वे पुत्रवती होकर भी पुत्रहीन हैं आपकी माताधन और सेवक से हीन दरिद्र अवस्था में भी जीवित है। इसके पश्चात् में अपनी माता कों खोजने लगा एक बार मैंने अपनी मां को झोपड़ी के पास देखा वह मुझे पहचान कर चिल्लाई। मैंनें अपनी पत्नी को दरिद्रता की प्रतिमूर्ति के समान देखा। कुछ समय पश्चात् इस प्रकार दरिद्र अवस्था को देखकर कहा- मां! अब स्वयं को पुत्रहीन समझियें, मैं जा रहा हूं शीघ्र ही अत्यधिक धन कमाकर इस दरिद्र अवस्था को दूर करूंगा। माँ ने बहुत रोका और कहा- तुम्हें पाकर बहुत कुछ पा लिया पत्नी और पुत्र सहित आराम से रहेगें, काम करोगे तो दासत्व रहेगा। फिर भी में नहीं माना तो मैं ने कहा- यदि जाना है तो अपने मामा के पास जाओं क्योंकि वही एक मात्र विपत्ति के साथी है। इसंके पश्चात् मैं ताम्रलिप्ती नगर की ओर गया मार्ग में विदेशियों के साथ यात्रा की। मार्ग में सिद्धार्थक नाम का व्यापारी मिला उसने सानुदास से बहुत साधन स्वीकार करने को

कहा और अपने कारवे के साथ चला गया। इसके पश्चात् सानुदास ताम्रलिप्ती नगर गया और नगर में विचरण करने लगा तभी एक वृद्वा आयी मुझसे चिपक कर रोने लगी। रोते हुए उसने कहा- मेरा पुत्र जो मुझे देखकर चला गया वह मुझे आज तुम्हारे रूप में मिल गया है। तुम मेरे पुत्र के समान हो इसलिये इतना सब कह दिया मुझे अपने घर ले गयी वहाँ हमने अपनी थकान दूर करके भोजन किया । प्रातः काल ताम्रलिप्ती नगर गया में अपने मामा के घर गया वहाँ मैंने खाया पिया और विश्राम किया कुछ दिन पश्चात् मामा ने कहा- तुम्हे सामने देखकर तुम्हारे पिता मित्रवर्मा का साथ महसूस कर रहा हूँ। इसलिये हमारे साथ आओं और व्यापार में हाथ बटाओ। इसके पश्चात् में व्यापार करने के लिये समुद्र मार्ग से गया परन्तु दैववशात् पोत तीव्र समुद्री तूफान में पलट गया। में किसी तरह समुद्र से लकड़ी के सहारे बाहर निकला। विशाल वन में कुछ देर विश्राम किया। इसके पश्चात् एक गुफाद्वार जो एक बडे चट्टान से ढक गया था खोला तो मैंने एक स्त्री को जो चट्टान के पीछे देखा। वह मुझे देखकर डर गयी। मैंने मन में सोचा - यह कोई देवी है या राक्षसी अथवा कोई अप्सरा है। मेंने कहा- बाहर आ जाइये। उसने कहा- आप डरिये नहीं में कोई राक्षसी नहीं हूँ इस पर आश्चर्य चकित हुआ। जैसे ही मेंने उसे देखा, वह वस्त्रहीन निम्न मानव थी। मैंने उसे अपना आधा वस्त्र दिया और मुख दूसरी ओर घुमा लिया। इसके पश्चात् पूँछा- तुम कौन हो, और कहां से आयी हो। उसने बताया- सगर नाम का एक व्यापारी था उसकी पत्नी यवनी थी । उसके एक सगरदीन और दूसरा पुत्र समुद्रसेना था। उसके पिता ने चम्पानगर के कुशलमंत्री मित्रवर्मा के पुत्र सानुदास से सगाई की। सानुदास कामदेव की तरह सुन्दर थे परन्तु धूर्त थे उनका सभी धन एक वेश्या द्वारा हर लिया गया था। उस रहस्यमय सानुदास की कथा सुनकर सगरदीन परिवार ने यवन देश छोड़ दिया और पूरा परिवार यवन देश छोड़ते समय मार्ग में समुद्री तूफान में नष्ट हो गया। उनकी समुद्र दीना नाम की पुत्री जो दुर्भाग्य के कारण भयंकर तूफान में भी बच गयी जो में हूँ। सानुदास ने मन में सोचा - वही अभागा सानुदास भी में हूँ। इसके पश्चात् सानुदास से समुद्रदीना ने उसकी पूरी कथा पूछी इस पर सानुदास ने कहा'- चम्पा नगरी में मित्रवर्मा नाम का एक प्रसिद्ध व्यापारी था जिसकी मृतवती नाम की पत्नी थी । उनके सब विद्याओं में निपुण एकमात्र पुत्र सानुदास था और में वही सानुदास हूँ

उस वेश्या ने मैंरा सब कुछ लेने के पश्चात् मुझे निकालना चाहा। इसके पश्चात् सानुदास ने अपनी अथ से इति तक पूरी कथा सुनायी। कथा सुनने के पश्चात् समुद्रदीना ने मैंरा अलिङ्गन किया, इसके पश्चात् हम दोनों युवा हाथी के जोड़े की तरह वहाँ बिहार करने लगा। एक दिन समुद्रदीना ने सानुदास से कहा- भगवान का स्मरण करके असहाय व्यापारी की तरह व्यापार करिये और सहायता के लिये ऊंचा झंडा गाड दिया। प्रातः काल सहायतार्थ एक छोटी सी नाव हमारे सामने आयी। महापद्म नाम के धनी व्यापारी ने मित्रवर्मा के पुत्र सानुदास को लिया और इस दशा का कारण पूँछा सानुदास ने विस्तार से बताया। समद्रदीना और सानुदास दोनों समुद्रतट से आवश्यक मोती भरकर वापस आने लगे परन्तु पुनः समुद्र मार्ग में पोत अत्यधिक मोतियों के भार के कारण दुर्घटना ग्रस्त हो गयी और में चेतना खो चुका होश आने पर स्वयं को समुद्र तट पर पाया। सायंकाल को में पाड्य देश के एक धूमिल गांव में कि धनी परिवार में पहुंचा उसने मैंरा आतिथ्य सत्कार किया रात्रि विश्राम कर प्रातःकाल दो मील यात्रा करने के पश्चात् कुछ विदेशी व्यापारियों को देखा- उनके पास गया तो उन्होंने पूँछा- क्या आपने सानुदास को देखा हैं, सानुदास ने बताया- मैं ही सानुदास हूँ इस पर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुये और शीघ्र ही यह समाचार आग की तरह फैल गयी कि सानुदास जीवित है। इसके पश्चात् सभी व्यापारी क्रय-विक्रय के लिये सानुदास से रत्न परीक्षण कराया। इस प्रकार वहाँ रहते हुए मैंने सोचा क्यों न छोटे से अधिक लाभ कमाया जाय। कपास से रूई बनाकर एक बडा सा ढेर लगाया परन्तु चूहे ने जलता हुई दीपक गिरा दिया जिससे आग लग गयी, सब मेंहनत बेकार गयी और में शीघ्र ही वहाँ से भाग गया और दूर तक भागता रहा। बहुत दूर एक वृक्ष के नीचे थककर सो गया, काफी समय बीतने के पश्चात् अचानक नींद खुलने पर मैंनें देखा कि बहुत से लोग हमें घेरे हुए हैं में उन्हें बताया कि सानुदास कपास की अग्नि में जल गया। इस पर वे सभी बहुत चिन्तित हुए और सोचा कि सानुदास की मृत्यु का समाचार कैसे दें। दुःखी मन से जैसे ही अग्नि में प्रवेश करने लगा वैसे ही सानुदास तेजी से चिल्लाया- यह अनर्थ मत करिये मैं ही सानुदास हूँ। यह सुनकर सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए और सानुदास से कहा- घर जाओ और अपनी माता के कष्ट को दूर करो। एकरा नामक व्यापारी के साथ समुद्री मार्ग से भयानक और विशाल वन के वेणुपथ मार्ग से ऋषि भारद्वाज

के सामने गया। भारद्वाज ने कहा अपनी लक्ष्मी के समान पुत्री को ले जाओं युवा होने पर इस कन्या को उसी को देना जो वीणावादन में इसके योग्य हो। इसके पश्चात् गन्धर्व नगर आया और यह प्रतियोगिता हुई जिसके कारण मेरा विवाह हुआ।

इसके पश्चात् मां के पास गया और पैरों पर माथा टेका माता मुझे काफी समय पश्चात्देखकर प्रसन्नता से अभिभूत हो गयी । प्रेम से मैंरा अलिंग्गन किया और अन्दर ले गयी । वहाँ अन्दर जाकर मैंनें देखा पहले से खड़ी पत्नी को देखा जो ऊंगलियों से अपने मुख को ढके हुये थी। इसके पश्चात् अपने मित्र ध्रुवक के साथ उद्यान में मदिरापान किया और अपनी पूरी कथा मित्रों से बताई कि किस प्रकार मार्गो से आयी कठिनाइयों से सघर्ष करते हुए, भयंकर तूफान में भी बच गया और किस प्रकार समुद्रदीना से जुड़ गया, बिछड़ गया और पुनः मिल गये और पुनः बिछड़ गये और बताया कि किस प्रकार गंगादत्त ने से गुलाम बनाकर सब कुछ छीन लिया। पुनः धन प्राप्त किया और यहाँ तक पहुंचा हूँ। तब सभी ने उसकी सच्चाई पर विश्वास कर लिया और एक दूसरे को गले से लगा लिया और कहा– आप सब अपनी इस सम्पत्ति का भोग करो अथवा आनन्द उठाओं और धर्मग्रन्थों के अनुसार दूसरे को भी उठवाओं अपने पिता और भगवान् आदि सभी के कर्ज से मुक्त हो जाओ।

एकोनविशति सर्ग

इस प्रकार अपनी पत्नी के साथ रहते हुए कुछ समय बीत जाने के पश्चात् एक बार हाथ में कपाल (खोपड़ी) लिये सामने एक व्यक्ति को देखा उसके हाथ में लाल गर्दन वाला मोर था। उस स्त्री के वेश में पुरुषने क्रोध से लाल नेत्रों से मुझे (गन्धर्वदत्ता) को देखा और उस मोर को मेरे ऊपर फेंक दिया। धीरे से उसे शान्त किया और कहा– यह राजा विद्याधर का विक्चिक् नाम का भाई है, देवी गौरी मुण्डा का पुजारी है। गौरीपर्वत पर रहकर अंधेरी जादू का प्रयास करता है। इन्हें सर्वसिद्धि प्राप्त है, जो भी इनकी पूजा नहीं करेगा वह शाप का भागी होगा।

एक बार चम्पा नामक नगर में एक राजा अपनी अभीष्ट पत्नी के साथ रहते थे जब उन्होंने अपनी गर्भवती पत्नी से अपनी इच्छा पूँछी तो उसकी लज्जित पत्नी को घड़ियाल केकडा मछली आदि से भरे समुद्र तट पर विचरण कराया। प्रातः काल चम्पा नगरी घूमने निकले सभी ने प्रशंसनीय नेत्रों से देखा। नगर के मध्य उन्होंने छोटी सी सुव्यवस्थित नगरी देखा, वहां पर एक कन्या को देखा जो काफी देर थी। एक दूसरे को दूर ले गये और धीरे-धीरे और एक दूसरे का हृदय जीत लिया। इसके पश्चात् हम बहुत देर तक घूमते रहे। आर्यपुत्र अपनी इच्छाओं के साथ पिघल गये उन दोनों ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया। इसके पश्चात् सुप्रभा गन्धर्वदेवता के कहने पर कि आप मुझे नलनिका बनाना चाहते हो? इस पर आर्यपुत्र ने कहा यह नलनिका कौन है? इस पर गन्धर्व देवता ने यह कथा सुनाया- पश्चिमी समुद्री तट पर इन्द्र के नगर की तरह सुन्दर काननद्वीप नाम का एक नगर है, उस नगर से अपने धन का अच्छा व्यापार करना चाहा। वहाँ के राजा कुमार मनोहर नाम का एक पुत्र था एक दिन कुमार मनोहर के मित्रों से कहा- गन्धशास्त्र विशेषज्ञ सुमंगल आपके दर्शन चाहता है। कुमार ने उसे सादर बुलवाया। उसने कुमार मनोहर को इत्र दिया और कुछ दिनों उन्हें प्रसन्न कर दिया। कुमार मनोहर ने उनके साथ रमणीय उद्यान में सजीव प्रतिमूर्ति के समान एक यक्षिणी को देखा। कुमार मनोहर को उसने देखते ही उसने कहा- में सुकुमारिका नाम की यक्षिणी हूँ। कुबेर के शाप के कारण इस दशा को प्राप्त हूँ, कृपया इस शाप का अन्त कीरिये। स्त्रियों के प्रति दयालु कुबेर का क्रोध शीघ्र ही समाप्त हो गया। उसको क्षमा कर दिया। इसके पश्चात् वह यक्षिणी अर्न्तधान हो गयी। इसके पश्चात् इस कथा को सुनी तो कहा- यह सुकमारिका आसानी से सुलभ दिखायी दे रही है। यह कुञ्ज पर्वत अन्यन्त दुर्गम है। एक दिन मनोहर अपने पिता से मिलने गया, वहाँ एक व्यापारी देखा जो साहसिक समुद्री यात्रा से लौटा था, उसने महाराज को महारत्न उपहार स्वरूप दिया था, राजा ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया। उसने बताया समुद्री यात्रा अत्यन्त रोमाञ्चकारी है इसके पश्चात् समुद्र तट के आश्चर्य जनक चीजों के विषय में बताया। इस पर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समुद्री व्यापारी के घर से लौटने के पश्चात् कुमार मनोहर ने जहाज तैयार करवाया और एक नाविक नियुक्त कर समुद्री यात्रा पर निकल पड़े। उनके साथ उनके मित्र आदि भी यात्रा पर निकल

पड़े। और शीघ्र ही अपनी इच्छित दिशा में पहुंच गये। कुञ्ज पर्वत पर पहुंचकर, इसके पश्चात् समुद्र के नीली चट्टानों से युक्त समुद्र तट पर पहुंचे। यह सब देखकर कुमार मनोहर अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए वह अन्तःपुर में गया वह दिव्य स्त्रियों द्वारा मदिरा पेश किये जाने पर विभिन्न मधुर क्रीड़ाओं द्वारा आकृष्ट कर लिया गया। पाँच दिन पश्चात् सुकुमारिका ने कहा- अब आपको वापस जाना चाहिए। यह देवलोक का एक भाग है यहाँ कोई भी मानव पांच दिन से अधिक नहीं रूक सकता। यह सुनकर कुमार मनोहर के मन को कष्ट हुआ इस पर सुकुमारिका ने कहा- कुमार! आप जाये आज के पश्चात् में आपके पास आऊंगी इसके पश्चात् वह वापस आ गया सभी ने फूल माला आदि से उनका स्वागत किया और पूँछा कुमार! आपने पांच दिन कैसे व्यतीत किया इस कुमार ने सब कुछ विस्तार से बताया और कहा उन दिव्य कन्याओं ने देवताओं की तरह हमारी सेवा की। सभी यक्षिणी कथा में लीन होकर लम्बा समुद्र पार कर लिया। कुमार मनोहर ने महल जाकर प्रणाम किया। इसके पश्चात् रात्रि में कुमार अपनी प्रेमिका का शैय्या पर बैठकर इन्तजार करने लगा। कुछ समय पश्चात् सुकुमारिका आकर शैय्या पर बैठ गयी। कुमार और सुकुमारिका ने अपनी इच्छानुसार रात्रि को व्यतीत किया। इस प्रकार पूरा एक वर्ष कैसे बीत गया उन्हें इसका पता भी नहीं चला। एक दिन अचानक वह रोने लगी और रोते हुए कहा- अष्टमी पर्व पर अपने माता- पिता से मिलने उनके घर जायेगें आप भी वहाँ मिलने आ सकते है। इसके पश्चात् अपनी प्रिया से बिछड़ करके पूरा एक वर्ष व्यतीत किया। पुनः धन कमाने की आकांक्षा से समुद्री यात्रा पर निकला। मार्ग में चोरों उनके सभी आभूषण छीन लिये तभी एक अश्वारोही द्वारा वे चोर पकड़ लिये गये वह युवक कुमार मनोहर उसके सामने आया और अभिवादन किया और एक में नगर सम्मान सहित ले गया। उस नगर के राजमहल में प्रवेश किया और राजा को अभिवादन किया और प्रणाम किया। कुमार मनोहर ने सुमंगल को देखा। उसने पूँछा- आप यहाँ कैसे आये इस पर सुमंगल ने बताया यह नागपुर नगर है जिनसे आप मिले वह राजा पुरन्दर है। उनके जयन्त नाम का पुत्र था जो अत्यन्त बहादुर और चतुर था वही आपको समुद्र तट से लाया इस राजा के नलनिका नाम की अत्यन्त सुन्दर पुत्री है राजा उसके सदृश वर प्राप्त करने के लिये चारों ओर भेजा परन्तु सुयोग्य वर प्राप्त करने में सफल नहीं हुये मैंने अपने मालिक राजा पुरन्दर

की पुत्री नलनिका को मात्र चित्रफलक में चित्रित देखा था और आपको देखकर मैंने स्वयं को धन्य समझा। क्योंकि आपके सदृश अन्य कोई वर नहीं हो सकता। इसी कारण आपको अपहृत कर यहाँ लाया गया है। इसलिये आप कुमारी नलनिका को स्वीकार कीजिये। इसके पश्चात् दोनों का शीघ्र ही विवाह कर दिया गया। इसके पश्चात् नलनिका ने कहा कि तुम कभी भी अपने पति से दूर सोना अन्यथा उसकी प्रेमिका यक्षिणी उसे अपहृत कर सकती है। परन्तु दुर्भाग्यवश कुमार मनोहर एक दिन नलनिका से दूर सो गया। सुकुमारिका ने कुमार मनोहर नलनिका से अलग सोया देखकर उसे अपहृत कर दूर ले गयी। इस कथा के पश्चात् गन्धर्वदत्ता ने नरवाहनदत्त से कहा- जैसे सुकुमारिका नलनिका के पति को दूर ले गयी उसी प्रकार यह वन कन्या भी आपसे मुझको दूर ले जाकर लुभाया है।

विंशति सर्ग

बसन्त ऋतु के समाप्त हो जाने पर एक बार वीणादत्तक आया और राजा नरवाहनदत्त से कहा महाराज! यहाँ मनोरञ्जन का अच्छा अवसर है। मैंनें राजमार्ग में वृद्धा स्त्री को देखा उसने मुझे अपना प्रभाव दिखाकर कहा- पुत्र! मेरी पुत्री अजिनवती है, इस अपने मालिक के लिये स्वीकार करो। में किसी तरह बचकर आपके पास आया हूँ। इस बार दत्तक ने कहा- आप चिंता न करें,उन्हें हमारे पास लाइये। दत्तक संदेश वाहक की तरह गया और वापस आया और कहा- वह वृद्धा स्त्री आपके संदेश को सुनकर तेजी से हंसी। नरवाहनदत्त ने सोचा निश्चय ही चालाक स्त्री एक अच्छी भविष्य वक्ता भी है। भरद्वाज पुत्री गन्धर्वदत्ता भी आतंकित थी उसे दरिद्रता के बुखार ने जकड़ लिया है।। उसका वस्त्र जल गया और चन्दन के लेप में डूब गया फिर भी उसका सन्ताप दूर नहीं हुआ। हमारे शरीर के आलिंग्न से ही उसका सन्ताप दूर करके प्रथम रमणीय रात्रि को व्यतीत किया। द्वितीय रात्रि का एक प्रहर बीत जाने के पश्चात् में अचानक किसी कठोर स्पर्श से जल गया और सामने विशाल नेत्रों वाले एक डरावने व्यक्ति को देखा। वह शक्तिशाली दिव्य पुरुषमुझे मारना चाहता था। महल के सुरक्षाकर्मी फर्श पर बेखबर सो रहे थे। किसी ने भी उसे आते नहीं देखा था इस प्रकार वह छोड़ दिया और चला गया।

67

एक बार दीर्घायु दत्तक द्वारा अपमान किया गया। दिव्य प्रेत को यहाँ भी लाना चाहिए। इसलिये अजिनवती को बलपूर्वक छिपा दिया गया परन्तु वृद्धास्त्री ने उसे देख लिया। उस वृद्धास्त्री ने कहा अपने श्वसुर से मिलाकर धनमती ने बताया कि यह राजा गौरी मुण्डा है महागौरी देवी को प्रसन्न करने के लिये पूजा करना चाहते हैं। यह अंगारक और व्यालक नाम के उसके दो भाई है। गौरी मुण्डा आपके भाई के साथ मिलकर आपसे शत्रुता के कारण आपको मारना चाहता है। परिणामस्वरूप मानसवेग और गौरीमुण्डा दोनों ही आपके शत्रु हो सकते है तब केवल कोई ईश्वर अथवा ब्राह्मण ही आपको बचा सकता है।

एक बार राजा गोपाल अपनी प्रिय पत्नी के विषय में चिन्ता करते हुए रात्रि व्यतीत किया। प्रातः काल अपनी इच्छानुसार विश्राम करने के पश्चात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते हुए कालिंदी नदी के तट पर हँसो को स्नान करते हुए देखा। इस प्रकार घूमते हुए अपनी पत्नी को भूलकर टहलने लगा। गोमुख को देखकर उससे पूँछा छोटा भाई कहां है? इस पर गोमुख ने कहा- गांव में प्रशान्तक नाम का ब्राह्मण है उसे लाने गया है। गोमुख ने उस ब्राह्मण को यहाँ बुलाने का प्रायोजन पूँछा- ब्राह्मण ने बताया हम दो भाई अवन्ति राज्य से आयें हैं बड़ा भाई दूसरी दिशा में गया है हम उनसे बहुत तरह से शिक्षा लेगें।

कौशाम्बी और वत्स देश करूणा से परिपूर्ण था। वहाँ अमितगति देखकर उन्हें आश्वस्त कर हरिशिखा को देखा। इसके पश्चात् वेगवन्ती भी अपने भाई से युद्ध में पराजित होकर अन्तःपुर। राजकुमार भी वीणादत्तक के घर जाकर सुखपूर्वक रूका, और अपनी माता से मिला। सभी ने अमितगति महाराज के विषय में पूँछा इस पर अमितगति ने कथा सुनायी-

वीणादत्तक ने गन्धर्वदत्ता के सौन्दर्य के विषय में सर हिलाया ओर कहा- यहाँ आप ध्यान से सुनिये तब स्वामी ने कहा- में अपनी प्रिया मदनमञ्जुका को भूल चुका हूँ। देवी! वेगवन्ती को कष्ट हुआ इसलिये गन्धर्वदेवता तो अर्जुन द्वारा जीती गई द्रौपदी की तरह हो गयी है। किंकर्तव्यमूढ़ होकर दुर्धटना को देखकर ईश्वर को याद करने लगी और जीवन त्यागने का निश्चय किया। इस पर मैंने कहा- यदि यही आपका निर्णय है तो सर्वप्रथम में

अग्नि में प्रवेश करूंगी इस पर रानी ने कहा-यदि आप ऐसा करेगें तो लोग क्या कहेगें इस पर राजा ने कहा- आप एक कथा सुनिये-

भगीरथी नदी के तट पर लम्बे-लम्बे बांसो से भरा एक विशाल वन था। इस वन की सीमायें डाकुओं से घिरी हुयी थी। कहा जाता है कि इस वन में एक चूहा भी झाड़ियों के मध्य मांद बनाकर रहता था। वह जंगली भोजन पर निर्भर था और आश्रम में रहने वाले साधुओं की तरह गंगा का पानी पीता था। एक दिन अचानक भोजन की खोज में वह कहीं गया उसका नगर में विचरण करने वाला उसका मित्र उसके घर आया। उसके आतिथ्य सत्कार के बाद उसके मित्र चुहिये से पूँछा- हे देवि! आपके पति कहाँ गये उसने बताया- भोजन खोजने के लिये गये हैं परन्तु उनको लौट आना चाहिए। कुछ समय प्रतीक्षा करिये इस प्रकार जाने लगा तो चूहिये ने रोका तभी गोकर्ण और हिरण जान्ह्वी नदी की ओर दौड़ा इस चूहा भी चौंक गया और चूहा मित्र की पत्नी से भागने को कहा। इस पर वह भयभीत हो गयी और कहा- तुम्हारा दामाद अपनी रक्षा के लिये महान साहस का प्रदर्शन किया। जब एक मित्र परेशानी में हो तो दूसरे मित्र को स्वार्थ छोड़कर गुणों की रक्षा करनी चाहिए। व्यर्थ आलाप की आवश्यकता नहीं है। आप जाइये। कुछ समय पश्चात् चूहा लौटा तो उसने देखा कि उसकी पत्नी बेहोश पड़ी है, उसका शरीर धूयें से काला पड़ गया था वह अपने बच्चों को पास में लिटा कर दीर्घ निन्द्रा में लेटी हुई थी यह देखकर वह जड़वत् खड़ा था, जब उसके चेतना आयीतो विलाप करना प्रारम्भ कर दिया। जो व्यक्ति मृत्यु से पीड़ित हो उसके पास दुःख के अतिरिक्त कोई मनोरञ्जन नहीं था परन्तु यह महान कष्टदायक पाप है। ब्राह्मणों को पाप मिलाप के लिये है- परन्तु स्त्री और बच्चों का पाप कभी नहीं धुला जा सकता। इस समय दयाहीन तुमने चूहे के परिवार का जन्म लोगे तुम। हजार बार चूहे के परिवार का जन्म लोगे तुम। परन्तु मित्र चूहे ने बताया कि वह इस घटना से भयभीत है। दुष्ट चूहे से अपने मित्र से कहा- तुम्हारा परिवार मेरे सामने नष्ट हो गया और में बच गया। इस प्रकार झूठी मित्रता को देखा। दुष्ट चूहे ने अपने मित्र का उपहास बनाया, अपने विश्वास से वंचित रखा इसके पश्चात् मृत परिवार का संस्कार करके छोड़ दिया और उस दिन के पश्चात् दोनों के मध्य शत्रुता हो गयी।

इस प्रकार वेगवती का देखकर पति की चिता जलाकर स्वयं को जलाने से क्या फायदा में स्वामी से क्या कहूँगा। इस प्रकार बहुत समझाने के पश्चात् अमितगति और वेगवती राजा की सभा में पहुंचे। और प्रेम से उन्हे प्रणाम किया और अपनी कथा के बारे में विस्तार से बताया। इस पर सेनापति यौगन्धरायण राजा से हरिशिखा और दूसरे सेना के साथ चम्पा जाने का निश्चय किया और सेना के साथ गये।

विन्ध्य पर्वत की ओर से दूसरे राज्य की तरफ प्रवेश किया वहाँ से पास में डाकुओं की एक बड़ी सेना थी, उन्होंने ड्रमों भेरी आदि की गर्जना सुनी। यह सुनकर सशस्त्र सामने आकर युद्ध करने लगी। परिणामस्वरूप निश्चय ही सशस्त्र सैनिकों ने भयभीत कर दिया। यह सब देखकर यौगन्धरायण पुत्र मरुभूति चमकती हुयी तलवार लेकर उठ खडा हुआ। गोमुख और तपन्तक भी तेजी से युद्ध करने लगा। पुनः सेना डाकुओं से घिर गयी। युद्ध में तपन्तक एक सैनिक का तीर लगा और वह घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसका अन्तिम संस्कार किया । पुनः चलना प्रारम्भ कर दिया। मार्ग भूल कर एक गांव में पहुंच गये वहाँ के निवासी डाकुओं के विषय में बताया और कहा कि वह नष्ट कर दिये गये।

एकविंश सर्गः

वहाँ एक महीने तक उस प्रशान्तक नामक ब्राह्मणों के साथ रहे। एक बार हरिशिखा आदि वाराणसी के सम्बगांव की ओर गये मार्ग में बहुत अधिक चलने के कारण थक गये। एक क्षण विश्राम करने के पश्चात् पुनः तरोताजा हो गये पुनः थोड़ी ही दूर गये। मार्ग में एक भिक्षुक मिला। उसने कथा सुनाई सिन्धु नदी के तट पर ' ब्रह्मस्थल' नामक एक गांव था वहाँ वेदशर्मानामक विद्वान रहता था जो चारों वेदों का ज्ञाता था उनका एक दृढ़द्यम नाम का एक परिश्रमी शिष्य था। एक बार एक भिन्नतमा नाम का एक वैष्णविक सम्प्रदाय का भिक्षुक आया उसे दृढ़द्यम ने अपने आश्रम में ठहराया और उसने 10 वर्षो तक वेदाध्ययन किया। एक दिन दृढ़द्यम अपने शिष्य के साथ वाराणसी नगर की ओर प्रस्थान किया और सिन्धु देश को छोड़कर कई देशों में बारह वर्षो तक विचरण करते रहे। एक बार नदी के तट पर पूजा करने के लिये गये । वहाँ गर्मी और प्यास से व्याकुल हो गया छाया खोजते हुए गांव में एक वृद्धा

स्त्री के घर गये और उससे पानी मांगा। उस वृद्धा ने पानी मंगवाया, एक कन्या मिट्टी के घड़े में पानी लेकर आयी। दृढ़द्यम ने पानी पिया और आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर अपनी थकान देर की। इसके पश्चात् वृद्धा ने पूँछा- आप कहां से आ रहे हो और कहां जा रहे हो। दृढ़द्यम ने बताया मैं कहीं नहीं जा रहा में ब्राह्मण गांव में भोजन वस्त्र प्राप्त कर शिष्यों को पढ़ाकर अपने कुछ दिन व्यतीत करना चाहता हूँ। तब वृद्धा ने अपने पुत्रों को पढ़ाने को कहा। इस पर दोनो पुत्रों को वेदाध्ययन कराने लगा।

एक बार किसी ने वृद्धा स्त्री से पुत्री तामलतिका का विवाह दृढ़द्यम से करने को कहा- उसने अपनी पुत्री तामलतिका का विवाह दृढ़द्यम से कर दिया विवाह के पश्चात् उन दोनों ने एक वर्ष व्यतीत किया। एक बार दृढद्यम ने सोचा- उस ब्राह्मण की तामलतिका से विवाह की बात सत्य निकली वह सर्वज्ञ है और सूर्य की तरह भविष्यवक्ता है- अब ब्राह्मण की तीसरी भविष्यवाणी को असत्य कर देना चाहिए। यह मन मैं निश्चय कर बारह वर्ष के लिये उस द्वीप पर इधर-उधर घूमने लगा। इस प्रकार घूमते हुए समुद्र पार करके गंगा नदी पर पहुंचे वहाँ सामने एक ऋषि का आश्रम देखा। वह हड्डियों की मुण्डमाला पहने था और मदिरा पान से उनकी वाणी लड़खडा रही थी। एक स्त्री जब दृढ़द्यम को खोपड़ी देने लगी तो उसे कपालिक ने रोका और कहा साधु आप तीर्थयात्रा पर जाओ। उस कपालिनी ने बताया- ये मेरे पति है और मैं तामलतिका की तरह हूँ। इस पर कापालिक ने कहा- आप ब्राह्मण है, आपको इस प्रकार अपनी पत्नी को नहीं छोड़ना चाहिए। दृढ़द्यम ने तामलतिका से कहा में मृत्युपर्यन्त तक यहाँ रूकूँगा। इसके पश्चात् वहाँ उपस्थित एक ब्राह्मण पुत्री से विवाह किया और तामलतिका ने अपना बाल साफ करवाया और गेरूआ वस्त्र धारण कर लिया। दृढ़द्यम के घर के पास ठहर कर अपना समय व्यतीत किया। इस प्रकार दृढद्यम पर पुनः भिन्नतमा की भविष्यवाणी असत्य साबित नहीं हो सकी।

द्वाविंश सर्ग

इसके पश्चात् शिष्यों ने पुरुषों की साम्यता के महत्त्व के विषय में पूँछा- पुरुषों की साम्यता का वर्णन करते हुए कहा-

उज्जियनी नामक नगर में सागरदत्त नाम का एक विशाल हृदय वाला व्यापारी रहता था। एक बार समुद्र मार्ग से व्यापार के लिये जाते समय मार्ग में अंग देश के व्यापारी बुद्धवर्मा से मिले। धीरे-धीरे उन दोनों में मित्रता हो गयी। व्यापार से लौटते समय उन्होंने अपने मित्रता प्रेम को सम्मानित करने के लिये यह निश्चय किया कि हम दोनों पुत्र–पुत्री का विवाह कर इस मित्रता को अच्छी तरह स्थापित करेंगे। यह निश्चय कर वे अपने -2 राज्य वापस आकर देखाकि उसके कुसुमालिका नाम की अत्यन्त सुन्दर पुत्री पैदा हुई और बुद्धवर्मा के कुरूभक नाम का अत्यन्त कुरूप और बौना पुत्र हुआ। इस पर बुद्धवर्मा अत्यन्त चिन्तित हुआ और उसे वेदाध्ययन के लिये भेज दिया सागरदत्त ने कई बार उसे देखना चाहा तो बुद्ध वर्मा ने झूठ बोलकर उसे टाल दिया। इस प्रकार चौदह वर्ष बीत जाने के बाद सागरदत्त द्वारा आग्रह किये जाने पर बुद्धवर्मा ने अपने दूसरे मित्र के वेद और स्मृतियों में निपुण यज्ञदत्त नाम के पुत्र से कर पुनः अपने पुत्र से करने का निश्चय किया और यज्ञदत्त को कुरूभक बनाकर शीघ्र ही कुसुमालिका से विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् एक बार तीव्र आमाशय पीडा से यज्ञदत्त परेशान हो गया। कुछ दिन पश्चात् ठीक होने पर एक दिन कुरूभक द्वारा कुसुमालिका को पता चला कि कुरूभक ही उसकापति है, यज्ञदत्त से जबरदस्ती विवाह किया गया है, इसलिये घर छोड़कर भाग गई, भागकर वह एक ब्राह्मणी के घर पहुँची, वह ब्राह्मणी बुद्धवर्मा को उसकी धूर्तता पर धिक्कार रही थी। कुसुमालिका ने उस ब्राह्मणी को कारण बताया और रहने के लिये शरण मांगी।

कुसुमालिका कापलिका का वेश उतारकर ब्राह्मणी के यहाँ कुछ समय तक रही और स्वयं को छिपाने के लिये बाहर वह कापालिक का वेश धारण कर विचरण कर रही थी। इस प्रकार वहाँ रहते हए वहाँ काफी समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् एक दिन यज्ञदत्त के घर

जाने लगी। जाते समय वह वाराणसी पहुंचकर वहाँ नैमिषारण्य में वहाँ चार महीने रूकने के पश्चात् घर वापस आयी। वहाँ से अपने भाई को भेजकर अपने पति यज्ञगुप्त को बुलवाया। उज्जियनी के राजा ने बहुत से गांव और स्वर्ण उपहार स्वरूप प्रदान किय। इसके पश्चात् कुसुमालिका ने पुनः अपने पति यज्ञगुप्त से विवाह किया और प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे।

त्रयोविंश सर्ग'

तुरन्त इसके पश्चात् गोमुख गया और वापस आया और कुमार नरवाहनदत्त पुर्नवसु नाम के व्यक्ति से मिलवाया जो अत्यन्त साधारण था। उसने राजा को अभिवादन किया और सर झुकाकर खड़ा हो गया। राजा ने पुर्नवसु का प्रसन्नता पूर्वक अलिंगन किया। इसके पश्चात् रथ से पुर्नवसु के घर भोजन आमंत्रण पर गये। गोमुख ने पुर्नवसु की अत्यन्त प्रशंसा की।

एक बार राजा ने पुर्नवसु को जुआरियों से घिरा हुआ देखा, जब उसने जीती हुयी सम्पत्ति भिखारियों मैं बांट दी तो राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और राजा को पता चला कि वह पुष्कर और शकुनि के समान द्यूत विद्या प्रवीण्य है। राजा नरवाहनदत्त अपने मित्र के साथ भोजन किया। इसके पश्चात् पद, वाक्य, प्रमाण, काव्यादि की विभिन्न कलाओं और चित्रादि सीखने के लिय वाराणसी गये। वाराणसी जाते समय पाकशास्त्र में प्रवीण रसोईयें को बुलाकर सात्विक भोजन बनाकर खाया और उस रसोईये को नन्द और उपनन्द नाम के दो पुत्र थे। सभी ने राजा का सर झुकाकर अभिनन्दन किया।

चतुर्विंशति सर्ग'

इसके पश्चात् रसोईये पुत्र नन्द और उपनन्द द्वारा सेवा किये जाते में (नरवाहनदत्त) पुर्नवसु के घर कुछ दिन ठहरा एक दिन छत पर खड़े हुये राजा ने शिष्यों के समूह को देखा वे सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सौन्दर्य का वर्णन कररहे थे। उन्होंने ऋषि वृषिदत्त और साध्वी स्त्री से पद वाक्य प्रमाण आदि की विधिवत् शिक्षा ग्रहण किया।

एक बार उपनन्द ने महल में एक वीणा गोष्ठी आरम्भ की। इस गोष्ठी में सभी कलाकारों ने वीणा बजाई स्वयं उपनन्द ने भी अपने भाई नन्द के साथ वीणा क्रीड़ा आरम्भ

कर दिया। वीणा गोष्ठी में नारद के शिष्य और तुम्बुरू पुत्र प्रियदर्शन भी वीणा वादन द्वारा गोमुख के गर्व को चूर-चूर कर देना चाहता था। गंगारक्षित और प्रियदर्शन ने गोमुख को गुरू बनाने का निवेदन किया। इसके पश्चात् नन्द और उपनन्द के साथ उनके घर आया।

पञ्चविंश सर्ग

इसके पश्चात् पुर्नवसु के घर नन्द और उपनन्द और अन्य दूसरे मित्रों के साथ रहे। एक दिन गोमुख भोजन के समय तक नहीं आया। सभी बहुत चिन्तित हुये और बिना भोजन किये ही गोमुख की काफी समय तक प्रतीक्षा की। शाम को वह जब लौटा तो उसने मदिरा पीने का नाटक किया। लड़खड़ाती हुई आवाज से भीड़ के मध्य स्वयं को ब्राह्मण घोषित किया। साध्वी ऋषिदत्ता ने गोमुख को इस दशा में देखा तो अनिश्चित आशंका से अत्यन्त दुःखी हुई। ऋषिदत्ता ने गोमुख वत्स और कौशाम्बी की कथा के विषय में पूँछा । इसके पश्चात् पूँछा - कि क्या आप गोमुख जो कामदेव की तरह सुन्दर है जानते हैं। इस पर गोमुख ने नहीं बताया कि मैं ही गोमुख हूँ। इस पर ऋषिदत्ता ने गोमुख के विषय में विस्तार से बताया-

राजगृह में पद्मनाम का एक व्यापारी था उसके सुमना और महदिना नाम की दो पत्नियां थी तथा दो पुत्र व दो पुत्रियां थी, पुत्रों के भी सुमना और महदिना नाम की पत्नियां थी उसमें सुमना का विवाह, वाराणसी के एक बड़े श्रेष्ठी (व्यापारी) के साथ हुआ और महदिना का विवाह चेदि और वत्स देश के राजा विद्याधर के मित्र ऋषभ के साथ हुआ और उन्हीं का पुत्र गोमुख है। और में ऋषभ की पत्नी और अर्थात् गोमुख के मामा की लड़की हूँ। हमारे बड़ों ने इन्हीं के साथ हमारी सगाई कर दी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश पद्यम जी की मृत्यु हो गयी और उनकी मृत्यु के पश्चात् सब बिखर सा गया। सुमना का विवाह सुतधारा से हो गया और में (ऋषिदत्ता) मृत्यु को देखकर ज्ञान के प्रकाश से संसार से मुक्ति के लिये इस तपस्वी मार्ग का अनुसरण किया और गोमुख भी अपने मित्र वर्गो के साथ अपने स्वामी चम्पा के लिये शत्रुओं द्वारा मारा गया और गोमुख की मृत्यु हो गयी। यह कथा सुनकर गोमुख ने मन मैं सोचा कि मेरी मृत्यु का समाचार अपवाद मात्र था। परन्तु जो इस भिक्षुक संयासिनी ने कहा

वह सच दिखायी पड़ रहा है। यह सब वृतान्त सविस्तार से राजा नरवाहनदत्त से बताया। एक बार मैंने (गोमुख ने) ऋषिदत्ता के सामने ज्वर कष्ट का बहाना बताकर गिर पड़ा उसने विश्वास कर लिया और इस अवस्था में सात दिन और सात रात्रि बिना भोजन के व्यतीत किया। इस प्रकार जिसने अपनी पत्नी से छल किया वह प्रसन्नता के साथ रहने लगे।

षडविंश सर्ग

इस प्रकार प्रसन्नता पूर्वक रहते हुये एक बार उसे ऋषिदत्ता के घर पुनः राजा नरवाहनदत्त गोमुख के घर गया, उसने आतिथ्य सत्कार किया। एक बार गोमुख को प्रियदर्शन को वस्त्र उतारते देखकर स्त्री पुरुष में सन्देह हुआ। ऋषिदत्ता ने भी प्रियदर्शन को अपलक दृष्टि से देखा और प्रेम से गद्गद् वाणी से कहा- स्वयं पर ध्यान दीजिये। इसके पश्चात् अलङ्कार विहीन प्रियदर्शन को बुलाया उसके साथ वार्तालाप किया उसने कथा सुनायी- ऋषि सत्यव्रत की तरह प्रसिद्ध वेदवेदांगों में निपुण सत्यकौशिक नाम के ऋषि थे एक बार वह गंगा नहाने गये वहाँ उन्होंने एक पत्थर को पानी में तैरते हुए देखा वह देखकर आश्चर्य चकित हो गये वापस आकर शिष्यों को बताया। धीरे-धीरे यह समाचार राजा तक पहुंच गया रानी ने अविश्वसनीय इस कथन की सत्यता का परीक्षण करना चाहा। सभी ने बताया कि यह वचन मिथ्या है इस प्रकार राजा को विश्वास दिलाकर पिंगला नष्ट हो गया।

इसके पश्चात् गोमुख नंद और उपनंद द्वारा बनाया हुआ भोजन किया। उन्हें भोजन का स्वाद कुछ कषैला लगा और शरीर सूर्य के ताप की तरह गर्म महसूस हुआ वे ज्वर ग्रस्त हो गये।

सप्तविंश सर्ग

भोजन समाप्त करने के पश्चात् प्रगाढ़ मित्रता के कारण अलिंगन किया। इसके पश्चात् मदिरापान करके दिन भर विश्राम किया और रात्रि को जगकर व्यतीत किया। एक बार गोमुख ने राजा काशिराज के विषय में बताया- यह ब्रहमदत्त के पुत्र थे ओर श्रामण अपने मित्र कालिय को राजा के सामने बुलाया। उसने बताया महाराज! मेरी पुत्री विवाह योग्य हो चुकी है। कृपया उचित वर से उसका विवाह करें। राजा नरवाहनदत्त ने उसकी पसंद से

विवाह कर देने को कहा। तब उसने ऋषिदत्ता के साथ अपनी पुत्री को बुलाया- और उसकी पसंद के विषय में पूँछा- और कहा क्या आर्यश्रेष्ठ नरवाहनदत्त तुम्हे पसन्द है। इस पर वह अत्यन्त लज्जा से संकुचित हो गयी। शीघ्र ही श्रमण पुत्री का विवाह नरवाहनदत्त के साथ विधिवत् कर दिया गया। इसके पश्चात् वे सभी प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे। एक बार रात्रि में गोमुख के न आने पर सभी बहुत चिन्तित हुये नन्द और उपनन्द द्वारा बुलवाया और उसके खेलने में व्यस्त हो गये। इसके पश्चात् गोमुख ने बड़े धैर्य के साथ कथा कहना प्रारम्भ किया- तीव्र वेगवाला सुमना प्रियदर्शन का मित्र था। एक बार सुमना ने प्रियदर्शन से कहा- जब कष्ट में रहना तो हमें याद करना। एक बार एक व्यापारी की अकाल मृत्यु ने उसके दुःख को बढ़ा दिया पुत्रविहीन व्यापारी की पत्नी अत्यन्त चिन्तित हुई इस पर भविष्य में वह पुत्री विद्याधर की बहुत प्रिय पत्नी होगी इस प्रकार आश्वस्त किया।

अष्टाविंश सर्ग

इस प्रकार वाराणसी में प्रियदर्शन अपनी पत्नी और मित्रों के साथ प्रसन्नता पूर्वक रहने लगा। एक बार नरवाहनदत्त अपने मित्रों के साथ ईश्वर की पूजा आराधना की। इसके पश्चात् प्रियदर्शन को दो आभूषण स्वरूप प्रदान किये और हास परिहास के मध्य अपने दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन कुमुदिका ने प्रियदर्शन को मालिश करते हुए देखा । राजकुमारी ने कहा- निश्चय ही यह निशान कुल कन्या द्वारा लिये गये है इस प्रकार से भोजन जल आदि से आतिथ्य सत्कार किया। इसके पश्चात् सुलभ आभूषण धारण कर लिया। एक दिन कुमुदिका आयी और बताया कि सभी ने भगीरथीयशा की वन्दना की है। मैं कल माध्वी, चम्पक और आम आदि वृक्ष की शाखायें जो मञ्जरियों के भार से टूट गई है। इन सबका आपस मैं विवाह का आयोजन करने जा रहा हूँ। प्रियदर्शन अगली बार पुनः राजकुमारी को देखने की आकांक्षा से छत पर चढ़ गया और शाम प्रतीक्षा में ही व्यतीत किया। शाम को एक ढकी हुई गाडी दूसरी तरफ चली गयी।

चतुर्थ अध्याय

बृहत्कथा श्लोकसंग्रह का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

काव्य प्रयोजन

काव्यशास्त्र के विवेचन-विश्लेषण में मनीषा की एक सुसम्बद्व एवं सुदीर्घ चिन्तन परम्परा रही है। काव्य की परिभाषा, आत्मा, प्रयोजन हेतु प्रेरणात्रेत, आन्तरबाह्य स्वरूप एवं मानवीय जीवन का अलौकिक्कत्व से उसका सम्बन्ध आदि अनेक विषयों पर भामह, दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ एवं पण्डितराज जगन्नाथ प्रभृति काव्य कला मर्मज्ञों की तत्व चिन्ता हमारे साहित्य के शास्त्रीय पक्ष को असंदिग्ध रूप से महिमान्वित करती रही है। अधुना, पाश्चात्य साहित्य की प्रेरणावश हमारे काव्य-साहित्य के अद्यतनीन मानदण्ड पर्याप्त रूप में विकसित हुए हैं, विशेषतः यदि आज काव्यालोचन के लिये कवि के समाजिक व्यक्तित्व की परीक्षा की जाती है तो पहले उसका अन्तर व्यक्तित्व ही अनुसन्धेय हुआ करता था। सम्प्रति हम 'काव्य प्रयोजन' पर ही विचार करेंगे जिसके लिये कवि बाह्य रूप की अपेक्षा उसके आत्मनिष्ठ तत्त्वों का प्रतिपादन ही अपेक्षणीय रहेगा। जिस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में सृष्टि एवं स्रष्टा में कार्यकारण सम्बन्ध के आधार पर मूलतः अव्ययी भाव लक्षित होता है उसी प्रकार काव्य तथा कवि में भी शक्ति एवं शक्तिमान प्रतिच्छवि है। और उसका कर्ता 'रसात्मक काव्य' सृष्टि का उत्पादक है। वेदों में भी सृष्टि और उसके रचयिता को 'काव्य' तथा ' कवि' की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

प्राचीनकाल से भारत के मनीषियों ने काव्य या साहित्य के प्रयोजन पर विचार किया गया है। यहाँ 'कला कला के लिये' की बात को नहीं माना गया है और न आधुनिक उपयोगिता को ही काव्य साहित्य जगत की पावन भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। अपितु काव्य के दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों प्रकार के प्रयोजन माने गये हैं।

नाट्य साहित्य अथवा काव्य साहित्य जगत् में काव्य के प्रयोजन पर सर्वप्रथम भरतमुनि ने तृतीय शताब्दी में किया था। इनका कथन है-

वेदविद्योतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम्।

विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्राम जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

अर्थ्रत् नाट्य कला का प्रयोजन है- लोक का मनोरञ्जन एवं शोक पीड़ित तथा परिश्रान्त जनों का विश्रान्ति प्रदान करना। भरत मुनि के प्रश्चात् ज्यों-ज्यों साहित्यिक विवेचना का विकास होने लगा त्यों-त्यों काव्य के प्रयोजन का विशद् विवेचन किया गया। प्रसिद्ध आलङ्कारिक आचार्य भामह के अनुसार–

धर्माथ काममोक्षेषु

वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्ति प्रीतिं च

साधु काव्यनिवेषवणम्।।[1]

अर्थात् सत्काव्य का अनुशीलन (1) धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नाम पुरूषार्थक चतुष्ट्य एंव कलाओं में निपुणता (2) यशः प्राप्ति तथा (3) प्रीति का कारण है।

आचार्य भामह के पश्चात् प्रसिद्ध रीतिवादी आचार्य वामन ने काव्य प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा है-

काव्यं सत् दृष्टाद्दृष्टार्थ प्रीतिकीर्ति हेतुत्वात्।।[2]

अर्थात् सत्काव्य के दो प्रयोजन है- (1)दृष्ट (2) अदृष्ट

दृष्ट प्रयोजन है– प्रीति और अदृष्ट प्रयोजन है- कीर्ति। प्रसिद्ध टीकाकारों के अनुसार यहाँ पर दो प्रकार की प्रीति विवक्षित है। एक तो काव्य श्रवण के अनन्तर सहृदयों के हृदय में होने वाला आनन्द और दूसरी इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार से उत्पन्न होने वाला सुख। यहाँ कीर्ति को स्वर्ग का साधन माना गया है– कीर्ति स्वर्गफलामाहुरा संसारं विपश्चितः। इसी से कीर्ति को अदृष्ट कहा गया है।

---

1 भामह– काव्यालङ्कार पृ०सं० 18

2 वामन– काव्यलङ्कार सूत्रवृत्ति। - पृ०सं०

11

तदन्तर प्रसिद्ध जनवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने भी 'प्रीति' को ही वाक्य का प्रयोजन बताया है–

तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्सरूपम्।[1]

किन्तु ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन तथा आचार्य अभिनवगुप्त की 'प्रीति' की व्याख्या रीतिवादी आचार्यों की व्याख्या से भिन्न है। यह तो उस विलक्षण आनन्द का नाम है। जो सहृदयों के हृदय की अनुभूति का विषय है, अथवा रसवादी आचार्य जिसे रसास्वादन पर रसानुभूति कहते हैं। तभी तो आचार्य भोजराज की कीर्ति प्रीतिं च विन्दति (सरस्वती कण्ठाभरण 1.4) इस उक्ति की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार रत्नेश्वर ने प्रीतिं का इस प्रकार विवेचन किया है–

प्रीतिः सम्पूर्णकाव्यर्थसमुत्थः आनन्दः। ध्वनिवादियों द्वारा प्रतिपादित काव्य के इस मुख्य प्रयोजन को बाद के आचार्यों ने अपना आदर्श वाक्य सा बना लिया। नवीन वक्रोक्तिवाद का उद्घाटन करते हुए आचार्य कुन्तक ने काव्य का यही प्रयोजन बताया-

धर्मादिसाधनोपापः सुकुमार क्रमोदितः।

काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लाद कारकः।।[2]

आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रयोजन-विषयक विभिन्न वादों का समन्वित रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। अपने से पूर्व समस्त आचार्यों (अलङ्कारवादी रीतिवादी, वक्रोक्तिवादी तथा रसवादी) के मत का ही समन्वय उन्होंने नहीं किया अपितु काव्य को केवल कला का चमत्कार मानने वालो 'अथवा केवल मनोविनोद का साधन समझने वालों अथवा अर्थशास्त्र के उपयोगितावाद की कसौटी पर कसने वालों के समक्ष भी एक 'समन्वय दृष्टि 'प्रस्तुत कर दी' काव्यं यशसे' इत्यादि कारिका के द्वारा काव्य के छः प्रयोजनों का निरूपण किया है-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यःपरनिवृतये कान्तासम्मितयोपेदशयुजे।।

---

1 आचार्य आनन्दवर्धन ध्वन्यालोकः

2 कुन्तक कृत– वक्रोक्ति जीवतम् 1/ 4

आचार्य मम्मट के अनुसार - काव्य की रचना यश की प्राप्ति के लिये, अर्थोपार्जन के लिये, व्यवहार के ज्ञान के लिये, अमङ्गल के निवारण के लिये, तुरन्त ही परम् आनन्द की प्राप्ति के लिये तथा प्रियतमा के समान उपदेश देने के लिये होता है।

आचार्य मम्मट के अनुसार एक विलक्षण आनन्द को परनिर्वृति अर्थात् उत्कृष्ट आनन्द कहा है। इस अलौलिक आनन्द की अनुभूति ही काव्य का मुख्य प्रयोजन है। यह एक ऐसा प्रयोजन है। जो अन्य सभी प्रयोजनों से शीर्षव्य है। यह आनन्द जो रसास्वादन रूप है निष्पन्न हो जाता है। यह सद्यः परनिर्वृत्ति है। इस अलौलिक आनन्दानुभूति के समय रचयिता को अन्य ज्ञेय वस्तुओं का ज्ञान नहीं रहता । तभी तो इस आनन्द को ब्रह्मनन्द सहोदर कहा गया है। समाधिस्थ योगी जैसा आनन्द प्राप्त होता है वैसा ही काव्य रसास्वादन का विलक्षण आनन्द है।

आचार्य मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य प्रयोजन अत्यन्त व्यापक है- इनमें उत्तम मध्यम तथा अधम सभी प्रकार के प्रयोजनों का समावेश हो जाता है। मम्मट ने काव्य का मुख्य प्रयोजन आनन्दनूभूति (परनिर्वृति) को स्वीकार किया है। किन्तु साहित्य तो जीवन की व्याख्या है तथा उसे जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता, अतएव सरसोपदेश भी काव्य का एक आवश्यक प्रयोजन माना जाता है तथा आचार्य मम्मट ने इसे मौलिभूत प्रयोजन के साथ समन्वित कर दिया है।

आचार्य मम्मट ने प्रायः सभी प्राचीन मतों का समन्वय कर दिया है। उनके काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत कीर्ति और प्रीति ही नहीं कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान के लिये सरसोपदेश भी है। साथ ही उन्होंने यशः प्राप्ति, धन- लाभ, और व्यवहारिक ज्ञान जैसे लौकिक प्रयोजनों को भी नहीं भुलाया है और अमङ्गल निवारण के धार्मिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखा है। संक्षेप में यह कह सकते है- अर्थोपार्जन जीवन का उपयोगिता वादी दृष्टिकोण है,कर्तव्यबोधन आदि आर्दशवादी दृष्टिकोण तथा शिवेतर क्षति के रूप में धार्मिक और विलक्षण आनन्द प्राप्ति के रूप में मनोरञ्जन चमत्कार एवं रसवादी दृष्टिकोण विद्यमान है।

यह विवेच्यकृति प्रयोजनों के सभी दृष्टिकोणों से समन्वित है। कवि बुधस्वामी ने इस महाकाव्य की रचना करते समय पाठकों के भरपूर मनोरञ्जन का ध्यान रखा। अनेक उपकथाओं के माध्यम से पाठकों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने का भरपूर प्रयत्न किया है। परन्तु यश प्राप्ति और अर्थ प्राप्ति का उनका कोई उद्देश्य नहीं था। परन्तु गुणाढ्य कृत इस विलुप्त वृहत्कथा को अध्ययनकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

काव्य भेद

संस्कृत साहित्य में काव्य के भेद अनेक प्रकाकर से किए जा सकते हैं - 1. स्वरूप के आधार पर 2. शैली के आधार पर 3. रमणीयता के आधार पर। पुनः स्वरूप के आधार पर काव्य के दो भेद किए जा सकते हैं - 1. दृश्य काव्य 2. श्रव्य काव्य। शैली के आधार पर काव्यों का तीन प्रकार से वर्णन सम्भव है - 1. गद्य काव्य 2. पद्य काव्य 3. मिश्र काव्य और पद्य काव्य और मिश्र काव्य गद्य और पद्य मिश्रित काव्य होता है। रमणीयता अथवा व्यंग्य प्राधान्य के आधार पर काव्य को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है - 1. उत्तम काव्य 2. मध्यम काव्य (गुणी भूत व्यंग्य काव्य) एवं अधम अथवा अवर चित्र काव्य।

आचार्य आनन्दवर्धन व्यंग्य के प्रधान एवं गुण भाव की स्थिति में क्रमशः ध्वनि काव्य एवं गुणी व्यंग्य एवं चित्र किया है। इन्हें क्रमशः उत्तम मध्यम एवं अवर कोटि का स्वीकार किया। आचार्य विश्वनाथ ने आनन्द वर्धन से प्रभावित होकर काव्य का दो भेद - ध्वनि काव्य एवं गुणीभूत व्यंग्य काव्य ही स्वीकार किया। आचार्य विश्वनाथ का आशय यह है कि शब्द और अर्थ चित्रों का रसादि में ही तात्पर्य होने के कारण अलंकार प्रधान होने से गुणीभूत व्यंग्य नामक मध्यम काव्य में अन्तर्भाव हो जाता है।

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा :

काव्य में परम्परा एक श्रृंखलावद्ध क्रमिक विकास से बनती है। जिस प्रकार भाषा एवं भाव दोनों का औचित्य पूर्ण निबन्धन ही काव्य है ठीक उसी प्रकार दोनों का विकास एवं प्रसार परम्परा द्वारा ही होता है कुछ विद्वानों ने परम्परा को रूढ़ि का पर्याय माना है परन्तु देखा जाय तो

दोनों भिन्न रूप है। परम्परा की विकसित होती हुई कड़ी जो बीच में ही अवरूद्ध हो जाती है तथा विकास में बाधक होती है रूढ़ि कहलाती है जो सर्वथा व्याज्य है या हम यह कह सकते है कि "परम्परा" परिवर्तन और विकास की गति है जब रूढ़ि "अपरिवर्तन निश्चलता का प्रतीक पर्याय है।"

संस्कृत साहित्य में काव्य की परम्परा अति प्राचीन .काल से चली आ रही है। हमारे अति प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, इतिहास तथा पुराणों में भी हमें काव्य के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। अनेक प्राचीन शिलालेखों और महाकाव्यों में भी संस्कृत काव्य की प्राचीनता का पता चलता है। लेकिन महाकवि बाल्मीकि कृत रामायण ही आदि काव्य के रूप में प्रतिस्थापित है। बाल्मीकि कृत तथा क्रौंच वध से आहत मना महाकवि वाणी से प्रतिस्फुटित है - मा निषाद .... आदि काव्य माना जाता है[1] और यही काव्य रूपी गंगोत्री का उद्गम माना जाता है जो कालान्तर में भास कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ, तथा श्रीहर्ष आदि विभिन्न स्रोतों में विभक्त होकर संस्कृत काव्य कानन में सींचती चली आयी है तथा विभिन्न महाकाव्यों के प्रणयन का संबल यही है।

इस प्रकार हम देखते है कि रामायण और महाभारत ये दोनों काव्य परम्परा के उत्प्रेरक तत्त्व हैं। कालान्तर में प्रायः सभी काव्यों एवं महाकाव्यों के कथानक इनसे ही अनुप्राणित हैं। ये दोनों काव्य शास्त्र के मार्ग के भिन्न होने पर भी एक दूसरे के अनुपूरक है इन काव्यों को आधार बनाकर बाद में काव्यों की रचना की गयी है।

---

2. मा निषाद प्रतिष्ठास्त्वम गमः शाश्वती समाः ।
यत क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

(वाल्मीकि रामायण 2/15)

इस प्रकार भारतीय संस्कृत वाड.मय का आदि स्रोत जिस सामाजिक वातावरण में विकसित हुआ उस समय की संस्कृत आश्रम संस्कृत थी। अतः साहित्य एवं कला में भी सादगी उदात्तता एवं आध्यात्मिकता परिव्याप्त है।2 एक तरफ आश्रमों की सादगी है तो दूसरी तरफ राजकीय वैभव भी परिलक्षित होता है। काव्य का एक सहज और सुलभ सौन्दर्य है जो स्वयमेव ही प्रस्फुटित होता है, उसे सजाने या सवारने के लिए विविध आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। इस दृष्टि से विद्वानों ने महाकाव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि - आशीर्वचन देव गुरू आदि का शब्दों द्वारा नमस्कार अथवा वस्तु निर्देश से काव्य का आरम्भ होना चाहिए। महाकाव्य की मुख्य विशेषता हैं कि महाकाव्य का आरम्भ मंगलाचरण आशीर्वादात्मक अथवा नमस्कारात्मकक होता है।[1] जैसे कालिदास ने रघुवंश का आरम्भ देव वन्दना से किया है। परन्तु कथावस्तु के निर्देश से भी प्रारम्भ होने वाला कतिपय महाकाव्य भी साहित्य जगत में विद्यमान है जैसे - भारविकृत - किरातार्जुनीयम्, माघ कृत - शिशुपालवध, श्री हर्ष कृत नैषधचरित आदि। इन्हीं महाकाव्यों की गणना में बुधस्वामी कृत बृहत्कथा श्लोक संग्रह महाकाव्य भी है।

काव्य भेद के विषय में आचार्य मम्मट ने ध्वनिककार का मत अपनाया है। ध्वनि कार से पहले के आचार्यो की दृष्टि काव्य भेदों का निरूपण यिका है। किन्तु उन आचार्यो की दृष्टि बाह्य स्वरूप तक सीमित रही। आचार्य भामह इत्यादि आचार्यो ने रचना शैली, भाषा, विषय वस्तु रचना का स्वरूप दृष्टियों से तो काव्य भेदों का निरूपण किया था किन्तु काव्य

---

1. सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते वस्य लक्षणम् ।
आर्शीनमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तमुखम् ।।
धर्मेन्द्र कुमार गुप्त - दण्डी (काव्यादर्श), मेहर चन्द लक्ष्मन दास
जी.एन. झा

की मूल चेतना इन आचार्यो का ध्यान नहीं गया।

इसी प्रकार संस्कृत महाकाव्यों के विकास को तीन समूहों में विभक्त किया है -

1. कालिदास का पूर्ववर्ती युग - जिसमें कथानक की प्रधानता है जैसे - रामायण, महाभारत आदि।

2. कालिदास का युग - जिसमें काव्य एक सरस ढंग से प्रवाहित हुआ है। जैसे रघुवंश कुमार संभव आदि। इस युग प्रतिनिधित्व कालिदास ने किया।

3. कालिदास का परवर्ती युग - जिसमें काव्य लेखन एवं परम्परा की कड़ी बन गयी जो भारवि से प्रारम्भ होता है तथा श्रीहर्ष की रचना तक अपनी चरम सीमा की अवस्था में पहुंच जाता है और एक अलग वैचित्य एवं पांडित्यपूर्ण परम्परा का निर्माण करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास के पूर्ववर्ती कवि व्यास और बाल्मीकि ऋषि इसी कोटि में आते हैं। इनकी रचनायें एक सहज ढंग की है।

महाकाव्य का लक्षण

महाकाव्य शब्द 'महत्' और 'काव्य' इन दो पदों में समास होकर बना है। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग प्रथम भारतीय और लौकिक साहित्य रामायण में हुआ।[1] महाभारत में भी ऐसे अनेक विशेषण प्रयुक्त मिलते हैं जिससे 'महाकाव्य' की कल्पना की जाती है महर्षि व्यास ने ब्रह्मदेव से निवेदन करते हुए श्रेष्ठकर्ता, विषय आदि की ओर संकेत किया है।[2]

इस प्रकार 'काव्य' शब्द के प्रयोग से पहले महा इस विशेषण से युक्त किसी भी भाषा का काव्य अपना एक विशिष्ट स्वरूप घोषित करता है और वही महाकाव्य कहलाता है, अर्थात् जो रचना महत् हो वही महाकाव्य कहलाता है अतः महाकाव्यत्व के लिए कलात्मक सौन्दर्य एवं विराट जीवन चेतना दोनों की समन्वित व्यंजना अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी काव्य की महत्ता का निर्धारण उसके काव्यात्मक गुणों पर आधारित होता है। इस प्रकार महाकाव्यों की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए भिन्न-भिन्न काव्याचार्यो ने महाकाव्य के शास्त्रीय गुण का विधान किया है। अतः महाकाव्य एक निश्चित, नियमबद्ध काव्य है। जहां तक लक्षण ग्रन्थ की परम्परा का प्रश्न है तो यह कहा जा सकता है कि आचार्य भरत के पश्चात महाकाव्य की सम्पूर्ण विवेचना करने वाले आचार्यो में आचार्य भामह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण

---

1. किम् प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठामहात्मनः ।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनि पुंगवः।।
(वा. रामायण उत्तरकाण्ड 94/23 ।।)

2. कृतं मदेयं भगवान् काव्यं परंपूजितम् ।
ब्रह्मन वेद रहस्यं च यच्चान्यत् स्थापित मया।
इतिहास पुराणानामुन्येषं निर्मितं च यत् ।
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः समर्थतां मुनेः । (महाभारत आदि पर्व)

है। इन्होंने ही सर्वप्रथम सर्गबद्ध काव्य को 'महाकाव्य' की इस संज्ञा से अभिहित किया और यह सर्ग की कल्पना भी आदि काव्य रामायण से ली गयी है।

आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य के स्वरूप का निर्देश करते हुए लिखा है कि 'महाकाव्य' सर्गबद्ध होता तथा उसका विषय गम्भीर होता है।[1]

महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता है। लक्ष्य के आधार पर लक्षण की कल्पना की जाती है - इस नीति के अनुसार वाल्मीकि रामायण तथा कालिदासीय महाकाव्यों के विश्लेषण करने से आलोचकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय रूप का अनुमान किया तथा आलंकारियों ने अपने अलंकार ग्रन्थों में उसके लक्षण प्रस्तुत किए। इन आलंकारियों में दण्डी सर्व प्राचीन है जिनका महाकाव्य का लक्षण सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है।[2] उनके अनुसार महाकाव्य की रचना सर्गो में निबद्ध होती है।

---

1. सर्गबन्धो महाकाव्य महत्तां च महत्त्वं यत् ।। भामह काव्यालंकार 1/23

2. दण्डीकृत काव्यादर्श 1/14, पेज नं0 19

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः। एकवंशभवाभूपाः कुलजाबहवाडपि वा।।
श्रृंगारवीरशान्तानामेकोडगी रसः इष्यते। अंगानि सर्वेडपि रसाः सर्वे नाटक-संधयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यंद्वा सज्जनाश्रयम्। चत्वारस्तस्य वर्गाःस्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तु निर्देश एव वा। क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेडन्यवृत्तकैः। नातिस्वल्पन्ना नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह
नानावृत्तमयः क्वापिसर्गः कश्चन दृश्यते। सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याह्व मृगया शैलर्तुवन सागराः।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः। रणप्रयाणोपयमन्त्रपुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथायोगे सांगोपांगा अमीइह। कवेवृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।।
विश्वनाथ - साहित्यदर्पण

उनमें एक ही नायक होता है जो देवता अथवा धीर उदान्त गुणों से युक्त कोई कुलीन क्षत्रिय होता है। वीर रस अथवा श्रृंगारस रस अथवा शान्त रस में से कोई रस मुख्य अंगी रस होता है। अन्य रस गौण रूप से रखे जाते हैं। कथानक इतिहास प्रसिद्ध होता है अथवा किसी सज्जन का चरित वर्णन किया जाता है। प्रत्येक के सर्ग में एक ही प्रकार के वृत्त में रचना की जाती है परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया जाता है। सर्ग न तो बहुत बड़े होने चाहिए न तो बहुत छोटे होने चाहिए। सर्ग आठ से अधिक होने चाहिए और प्रतिसर्प के अन्त में आगामी कथानक की सूचना होनी चाहिए। वृत्त को अलंकृत करने के लिए सन्ध्या सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, वन, ऋतु, समुद्र, पर्वतादि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अवश्य किया जाता है। बीच-बीच में वीर रस के प्रसंग में युद्ध, मन्त्रणा, शत्रु पर चढ़ाई आदि विषयों का भी सांगोपांग वर्णन रहता है। नायक तथा प्रतिनायक का संघर्ष काव्य की मुख्य वस्तु (विषय) होती है। महाकाव्य का उद्देश्य धर्म तथा न्याय की विजय तथा अधर्म और अन्याय का विनाश होना चाहिए।[1]

रूद्रट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "काव्यालंकार" (15/17-19) में दण्डी के द्वारा निर्दिष्ट इन्हीं काव्य लक्षणों को विस्तार के साथ दुहराया है। ध्यान देने योग्य यह बात है कि रूद्रट ने उतने ही विषय के उपबृहण तथा अलंकरण को उचित माना है जिससे कथावस्तु का कथमपि विच्छेद न हो सके। कालिदास के काव्यों में अलंकरण काव्य वस्तु का विच्छेद कथमपि नहीं करता, परन्तु भारवि तथा माघ इस दुष्प्रभाव से बच नहीं सके। भारवि में मूल कथा के साथ दूरतः सम्बद्ध ऐसे विषय पांच सर्गो तक (4,5,8,9,10) तथा महाकवि माघ में 6 सर्गो (6-11) तक रखे गये हैं। इस प्रकार इस

---

1. दण्डीकृत काव्यादर्श, पेज नं0 19

काल में प्रबन्ध काव्यों में एक्य तथा समन्वय का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है और श्रृंगार प्रधान विषयों का उपबृहण मूल आख्यान के प्रवाह को बहुत कुछ रोक देता है। विषय वर्णन में चमत्कार की कमी नहीं है परन्तु इन नवीन वस्तुओं के योग से काव्य का विस्तार, अलंकार का विन्यास इतना अधिक हो जाता है कि पाठकों का हृदय आप्यायित न होकर उनका मस्तिष्क भी पुष्ट होता है। वर्ण्य विषय तथा वर्णन प्रकार के सामंजस्य का अभाव जो कालिदास तथा अश्वघोष में खोजने पर भी नहीं मिल सकता इस युग के मान्य कवियों के काव्य की जागरूक विशेषता है। ब्राह्मण कवियों में चार महाकवि - भारवि, भट्रि, कुमारदास तथा माघ - इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं।

महाकाव्यों पर पाश्चात्य मत :

पाश्चात्य मत से महाकाव्य (एपिक) दो प्रकार के होते हैं 1. विकसित महाकाव्य (एपिक आफग्रोथ) 2. कलापूर्ण महाकाव्य (एपिक आफ आर्ट)[1]। इनमें विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों में अनेक कवियों के प्रयत्न से विकसित होकर अपने वर्तमान रूप में आया है। वह प्राचीन गाथाओं के आधार पर रचित महाकाव्य होता है। जैसे ग्रीक महाकवि होमर का इलियड और आडेसी नामक युगल महाकाव्य। इनका वर्तमान परिष्कृत रूप होमर की प्रतिभा का फल है परन्तु गाथाचक्रों के रूप में वे प्राचीन काल से बन्दीजनों के द्वारा गाये जाते थे। दूसरा कलापूर्ण महाकाव्य वह है जिसे एक ही वि अपनी काव्यकला से गढ़कर तैयार करता है। इसमें प्रथम श्रेणी के काव्यों के समग्र गुण विद्यमान रहते हैं परन्तु यह रहता है एक ही कवि की प्रौढ़ प्रतिभा का परिणाम। जैसे लैटिन भाषा में वर्जिल कवि

---

1. एपिक आफ ग्रोथ, एंपिक आफ आर्ट

द्वारा रचित 'इनिड' महाकाव्य। वर्जिल ने अपने लिए होमर को आदर्श माना और उन्हीं की काव्य कला का पूर्ण अनुसरण अपने महाकाव्य में किया। मिल्टन के पैराडाइस लास्ट तथा पैराडाइस रिगेण्ड होमर, वर्जिल तथा दांते के महाकाव्यों के समान उत्कृष्ट मान्य 'कलापूर्ण महाकाव्य' है। इस दृष्टि से यदि संस्कृत काव्यों का वर्गीकरण किया जाय तो वाल्मीकीय रामायण प्रथम श्रेणी अर्थात विकसित महाकाव्य में रखा जायेगा तथा रघुवंश एवं शिशुपालवध आदि द्वितीय श्रेणी के महाकाव्य में।[1]

यह विवेच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' के एक धीर नायक कुमार नरवाहनदत्त हैं। यह ग्रन्थ सर्गो में निबद्ध है तथा सर्गो की संख्या अट्ठाइस है, प्रत्येक सर्ग में एक ही वृत्त का प्रयोग किया गया है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में वृत्त बदल दिया गया है। प्रत्येक सर्ग में प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य का मनोहर वर्णन किया गया है आदि विशेषताओं से युक्त यह महाकाव्य है। अतएव इस विवेच्य कृति की गणना महाकाव्यों में करना त्रुटिपूर्ण न होगा।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, पेज नं0 139

रस और भाव की अभिव्यक्ति

काव्यानन्द का प्रधान रूप भावानुभूति या रसानुभूति है। किन्तु अलंकारवारी या चमत्कारवादी के लिए काव्यानन्द वह है जो चमत्कारजन्य होता है, जिसमें अलंकार की प्रधानता रहती है। आचार्यों ने काव्यानन्द में 'रस' को ही प्रधान माना है। यह 'रस' क्या है इसका स्वरूप क्या है? इस प्रश्न के समाधान के लिए 'रस' की अभिव्यक्ति के बारे में विद्वानों ने इस प्रकार कहा है -

'विभावनुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ।।[1]

सहृदय पुरूषों के हृदय में स्थित वासना रूप रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर आस्वादन योग्य हो जाता है वही अर्थात् इस प्रकार अभिव्यक्त अतएव अनुभूयमान रत्यादि ही रस कहलाता है।

अर्थात् काव्यादि के सुनने अथवा नाटकादि के देखने से 1. आलम्बन उद्दीपन विभावों 2. भ्रू-विक्षेप, कटाक्षादि आदि अनुभावों और निर्वेद ग्लानि आदि संचारीभावों अथवा व्यभिचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर सहृदय पुरूषों के हृदय में स्थित वासनारूप रति, ह्रास और शोक आदि स्थायी भाव श्रृंङ्.गार हास्य और करूण आदि ही रस कहलाते हैं। यह माना जा सकता है कि रसमग्न करने की क्षमता रूपक और काव्य तक ही सीमित नहीं रही। अपितु इसकी पिरिध के अन्तर्गत गीत, संगीत, नृत्य तथा चित्र आदि कलाओं एवं मुक्तक काव्यों के द्वारा भी रस का प्रदर्शन और अभिव्यक्त होते हैं अर्थात् रूपक अथवा काव्य ही नहीं यहां तक कि गीत, नृत्य और चित्र भी सहृदयों को रस विभोर कर सकते हैं। इस प्रकार यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि रस एक आनन्दमयी चेतना है।[2]

---

1. साहित्य दर्पण - तृतीय परिच्छेद - पेज नं0 7
   शालिगराम शास्त्री ।। मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन।।

2. रीतिकाव्यों की भूमिका

रस परिचय :

रस के सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों में बहुत मतभेद रहा है। रस के विषय में आचार्य भरतमुनि की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि - 'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पन्तिः।'[1] अर्थात् काव्य में प्रयुक्त अथवा नाटकादि अभिनय के द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा श्रोताओं अथवा दर्शकों के हृदय में परिवर्तनशील रति आदि स्थायी भाव आस्वाद्य होता है तो वही रस कहलाता है।

जहां तक विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी-भाव का प्रश्न है तो 'विभाव' शब्द की व्युत्पत्ति 'विभाव्यते इति' इस प्रकार होने से इसका अर्थ है कि 'जिसका ज्ञान हो सके। अर्थात् जिसे विभावित करके सामाजिक रसास्वादन करता है वह विभाव है। दूसरे शब्दों में विभाव के स्वरूप को इस प्रकार कहा जा सकता है -

रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः ।।[2]

अर्थात् लोक में रत्यादि के उद्बोधक हैं वे काव्य और नाटक आदि में साहित्य मर्मज्ञों द्वारा विभाव कहे जाते है अर्थात् लोक में सीता आदि जो रामचन्द्रादि की रति आदि के उद्बोधक प्रसिद्ध हैं वे ही यदि काव्य या नाटक में निवेशित किए जायें तो विभाव कहलाते हैं। यह विभाव स्थायी भाव को पुष्ट करने वाला है, उसे रस रूप में परिणत करने वाला है। यह आलम्बन एवं उद्दीपन के भेद से दो तरह का होता है। इसमें आलम्बन विभाव नायक राम आदि होते हैं क्योंकि उन्हीं का आश्रय लेकर रस की निष्पत्ति होती है अर्थात जो आश्रय भूत है आलम्बन विभाब है।[3]

---

1. नाट्य शास्त्र
2. साहित्य दर्पण शालिगरामशास्त्री तृती0 परिच्छेद
3. दशरूपक, भोला शंकर व्यास - पृ0 183

उद्दीपन विभाव का अर्थ है -

उद्दीपन विभावस्तेरसमुद्दीपयन्ति ।[1]

अर्थात् जो रस को उद्दीपित करते हैं वे उद्दीपन विभाव' कहलाते हैं। अर्थात् नायक राम आदि में रस का परिपोषक कारण चन्द्रमा चन्दन, कोकिलों का आलाप और भ्रमरों की झङ्.कार चन्द्रोदय आदि के रूप में मिलता है उन्हें ही लोकोत्तर वर्णनानिपुण कवि की कृति में उद्दीपन विभाव कहा गया है। अर्थात् नायक राम आदि में स्थित रति आदि के उत्प्रेरक में जो चन्द्रोदय आदि कारण हैं वही नायक में श्रृङ्.गार आदि रस को उद्दीप्त करते हैं अतः ये उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं।[2]

'अनुभाव' रत्यादि स्थायी-भाव को सूचित करने वाले विकार को कहते हैं -

विभावितार्यानुभूतिरनुभावः इति स्मृतः।[3]

अर्थात् जो विभावित अर्थो की अनुभूति अनुभाव कही जाती है। अनुभाव का लक्षण करते हुए कहते हैं -

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ।।[4]

अर्थात् सीता आदि आलम्बन तथा चन्द्रादि उद्दीपन कारणों से रामादि के हृदय में उद्बुद्ध रत्यादि को बाहर से प्रकाशित करने वाला लोक में रति आदि का कार्य कहा जाता है। वही काव्य और नाट्य में अनुभाव कहा जाता है। ये सामाजिकों के अनुभव का विषय होने के कारण[5] अथवा रति आदि स्थायी भाव के बाद

---

1. शारदातनय का भाव प्रकाशन ।
2. शारदातनय का भाव प्रकाशन, पेज नं0 7
3. शारदातनय का भाव प्रकाशन, पेज नं0 5
4. साहित्य दर्पण - शालिगरामशास्त्री पेज नं0 69
5. 'अनुभवन्ति' इति दशरूपक श्री निवास शास्त्री पृष्ठ सं0 262

होते हैं इसलिए अनुभाव कहलाते हैं। भाव-सूचक जो विकार हैं वही अनुभाव है, यह लौकिक दृष्टि से कहा गया है। काव्य में तो ये भी रस के निमित्त ही हैं।[1]

अनुभावों में स्तम्भ, प्रलय, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु एवं वैस्वर्य का अन्य की अपेक्षा विशेष महत्व है, क्योंकि ये सत्व के उद्वेग से उत्पन्न होते हैं इसीलिए उन्हें सात्विक भाव कहा जाता है। 'सत्व' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - 'निर्मल मन-। 'सत्व' मन की एक अवस्था है। इस अवस्था में मन एक दूसरे के सुख, दुःख में तद्रूप हो जाया करता है। इस सत्व के आधार पर ही नट अनुकार्य राग आदि से सुख-दुःख की भावना में अपने अन्तःकरण को तन्मय कर लेता है अर्थात् वह भी सुखी या दुःखी हो जाता है तभी वह रोमांच या अश्रु आदि को प्रकट कर सकता है। इस प्रकार उसके अश्रु, रोमांच आदि सत्व की स्थिति में उत्पन्न होने के कारण, सात्विक भाव कहलाते हैं। सात्विक भाव भी अनुभाव ही है क्योंकि ये अनुभाव के समान ही हृदय में स्थित हर्ष दुःख आदि भावों के विकार या परिणाम होते हैं और उनकी सूचना देते हैं।

दशरूपककार ने सात्विक भावों से पृथक रखकर उन्हें स्वतन्त्र महत्व देते हुए भरत मुनि के प्रसिद्ध रस सूत्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रस स्मृतः ।।[2]

अर्थात् विभावों, सात्विक अनुभावों और व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य किया गया स्थायी भाव ही रस कहलाता है।

'व्यभिचारी' शब्द की व्युत्पत्ति है - विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।[3] अर्थात् जो भाव विशेष रूप से स्थायी-भावों के रस

---

1. दशरूपक भोलाशंकर व्यास, पृ०सं० 186-।
2. दशरूपक 4/।
3. काव्य प्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर पृष्ठ 99

में परिणत होने की प्रक्रिया में (के दौरान) कभी उठते या प्रकट होते और कभी गिरते या अप्रकट होते नजर आते हैं वे 'व्यभिचारी भाव' होते हैं। ये स्थायी भाव उसी तरह उन्मग्न और निमग्न होते हैं जैसे समुद्र में तरंगे उठती गिरती और विलीन होती हैं।[1] यह 'व्यभिचारी भाव' एक स्थायी भाव है जो क्षण-क्षण में उठ गिर कर स्थायी भाव की पुष्टि करते हैं। 'व्यभिचारी भाव' को इसी प्रकार परिभाषित करते हुए कहते हैं -

"विशेषादिभिमुख्येन चरणाद्वयभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्चातद्धिदाः ।।"[2]

रस में स्थिरता से विद्यमान रत्यादि स्थायी भाव में उन्मग्न निमग्न अर्थात् आविर्भूततिरोभूत होकर निर्वेदादिभाव अनुकूलता से व्याप्त होते हैं। अतएव उपर्युक्त विशेष रीति से अभिमुख्यचरण के कारण ही उन्हें 'व्यभिचारीभाव' कहते हैं अर्थात् जो रति आदि स्थायी भावों को संचारित करते हैं अर्थात् परि—पुष्टि करते हैं और अभिव्यक्ति में उनके सहायक होते हैं। वे चिन्ता, औत्सुक्य आदि भाव काव्य तथा नाट्य में संचारी अथवा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। व्यभिचारी भाव के 33 भेद हैं - 1. निर्वेद 2. आवेग 3. दैन्य 4. श्रम 5. मद 6. जडता 7. औग्रय 8. मोह 9. विबोध 10. स्वप्न 11. अपस्मार 12. गर्व 13. मरण 14. अलसता 15. अघर्ष 16. निद्रा 17. अवहित्या 18. औत्सुक्य 19. उन्माद 20. शंका 21. स्मृति 22. मति 23. व्याधि 24. सत्रांस 25. लज्जा 26. हर्ष 27. असूया 28. विषाद 29. धृति 30. चपलता 31. ग्लानि 32. चिन्ता 33. विर्तक ये तैंतीस व्यभिचारी भाव अथवा संचारी भाव कहलाते हैं।[3]

रस के अतिरिक्त भाव रसाभास, भावाभास, भाव प्रशय भावोदय, भाव सन्धि और भाव सबलता, ये सब आस्वादित होने के कारण रस कहलाते हैं।[4] इनका स्वरूप प्रस्तुत है।

---

1. दशरूपक, भोला शंकर व्यास पृष्ठ 189
2. साहित्यादर्पण - शालिगराम शास्त्री 3/259
3. काव्य प्रकाश - 4/35
4. काव्य प्रकाश

भाव के सम्बन्ध में आचार्य मम्मट ने कहा है कि - देवादिविषयक रति और व्यङ्ग्य व्यभिचारी भाव, भाव कहलाता है।[1] आचार्य विश्वनाथ ने इसके अतिरिक्त उद्बुद्ध मात्र रति, हास आदि स्थायी भाव को भी भाव माना है।[2] रस अनौचित्य से प्रवृत्त होने पर 'भावाभास' कहलाता है।[3] किसी भाव की शान्ति, उदय, सन्धि अथवा मिश्रण होने से यथाक्रम भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भाव सबलता कहलाता है।[4]

काव्य में रस की स्थिति :

रस के सम्बन्ध में आचार्य भरत मुनि ने कहाहै - "विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।।" अर्थात् काव्य में प्रयुक्त अथवा नाटकादि अभिनय के द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा, श्रोताओं अथवा दर्शकों के हृदय में परिवर्तनशील रति आदि स्थायी भाव आस्वाद्य होता है तो वही रस कहलाता है।

वस्तु, नेता एवं रस तीनों ही रूपक के भेदक तत्व हैं। यद्यपि रूपक में इनका स्थान समान है तथापि रूपक का प्राण तत्व होने के कारण वस्तु एवं नेता की अपेक्षा रस का अधिक महत्व है वस्तुतः रसोद्रेक करना ही काव्य का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। आचार्य भरत से लेकर पश्चाद्वर्ती प्रायः सभी आचार्यो ने रस के महत्व को स्वीकार किया है। आचार्य भरत मुनि के अनुसार - "न हि रसादृते कश्चित् अर्थः प्रवर्तते ।।" आचार्य क्षेमेन्द्र रससिद्धि की स्थिरता को ही काव्य का प्राणतत्व बताते हैं।[5] आचार्य आनन्दवर्धन रस को ही काव्य में सर्वाधिक प्रामुख्य प्रदान करते हैं -

---

1. काव्य प्रकाश 4/35
2. साहित्य दर्पण 3/260
3. साहित्य दर्पण 3/262
4. साहित्य दर्पण 3/269
5. काव्यानुशासन, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, पृष्ठ 352

मुख्या व्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः ।
तेषां निबन्धने भाव्यं तैः सदैवाप्रमादिभिः।
नीरसस्तु प्रबन्धो यः सोऽपशब्दो महान कवेः।
स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षणः ।।[1]

श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य में रस को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। सर्वप्रथम नाट्य के प्रसंग में ही रस की उद्भावना की गयी थी। समयमातृकाचार्य ने, विभिन्न रसों की, वाचिक रस, नेपथ्य रस एवं स्वाभाविक रस के रूप में उपस्थिति स्वीकार की है। इनमें 'वाचिक रस' श्रव्य काव्य में 'नेपथ्य-रस' चित्रादि में एवं 'स्वाभाविक रस' मूकाभिनय आदि में वर्णित होता है।[2] जबकि रूपक में रस इन सभी रूपों में समन्वित रूप से प्राप्त होता है, काव्य में निहित वस्तु के प्रमुख स्रोत - पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थ होते हैं। जिनमें वृत्त अधिक विस्तृत रूप में होता है कवि इस विस्तृत वृत्त में से संक्षिप्त वृत्त को लेकर उसमें से नीरस अंश का परित्याग करके केवल सरस वृत्त को ही काव्य मय रूप से अकों में निबद्ध करता है।

काव्य में निहित वस्तु के स्वरूप को अभिनेता अपने सात्विक, वाचिक आदि अभिनयों से अनुकार्य का अनुकरण करते हुए प्रस्तुत करता है। यदि यही अनुकरण रस शून्य हो तो पूर्णतया उपहास पूर्ण हो जायेगा। इस प्रकार कवि पर रस निर्वाह का बहुत बड़ा दायित्व रहता है। आचार्य आनन्दवर्धन के शब्दों में - "अभिनेयार्थ तु सर्वथा रसबन्धेऽभिनिवेशः कार्यः।"[3]

काव्य में पुरूषार्थ चतुष्टय रूप फल की प्राप्ति हेतु श्रृङ्गार आदि रस अलग-अलग रूप में उपयोगी होते हैं। काम स्वरूप पुरूषार्थ की प्राप्ति नायक को नायिका के मिलन के रूप में होती है इसके प्रणय प्रसंग में ही श्रृङ्गार रस

---

1. ध्वन्यालोक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी पृष्ठ 217
2. नाट्य शास्त्र - प्रथम भाग भूमिका, साहित्य अकादमी समिति, पृष्ठ 52
3. दशरूपक - चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी पृष्ठ 185

की पुष्टि होती है। अतः आचार्य शारदातनय ने श्रृङ्गार रस को काम स्वरूप पुरूषार्थ हेतु उपयोगी स्वीकार करते हैं।[1] हास्य रस, श्रृङ्.गार रस का अनुगामी है। यह काम प्रधान होता है अतः यह काम स्वरूप पुरूषार्थ हेतु श्रृङ्.गार रस की भांति उपयोगी रस है।[2] जहां श्रृङ्.गार एवं हास्य रसों में आलम्बन और आश्रय को परस्पर भाव की अपेक्षा रहती है वहीं करूण रस में आलम्बन का अभाव रहता है। अतः आलम्बन एवं आश्रय को पारस्परिक भाव की अपेक्षा नहीं रहती है। अतएव आचार्य अभिनव गुप्त ने करूण रस को निरपेक्ष भाव वाला रस माना है।[3]

'अर्थ' स्वरूप पुरूषार्थ की प्राप्ति शत्रुदलन द्वारा ही सम्भव है, जो नायक की वीरता द्वारा सम्पादित होता है। अतः वीर रस को अर्थोपयोगी बताया गया है।[4] 'रौद्र-रस' भी कहीं-कहीं अर्थोपयोगी होता है। आचार्य 'शारदातनय के अनुसार - "यदि 'वीर' एवं रौद्र रस किसी की रक्षा हेतु हों तो वह रस धर्मोपयोगी होता है।[5] अभिनव गुप्त भी 'रौद्र-रस' को अर्थ प्रधान स्वीकार करते हैं।[6]

'धर्म' स्वरूप पुरूषार्थ, नायक को सज्जनों की रक्षा प्रतिनायक के दुष्ट-कार्यो के विरोध एवं उनके विनाश द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार 'वीर रस' का परिपाक धर्मपरक कार्यो हेतु ही होता है। कहीं पर इसी से अर्थ स्वरूप पुरूषार्थ की प्राप्ति भी हो जाती है। 'वीर-रस' की वीरत्व भयभीतों

---

1. भाव प्रकाशन शारदातनय, गायकवाड ओ0सं0सी0 बड़ौदा पृष्ठ 77
2. नाट्य शास्त्र द्वितीय भाग का0हि0वि0वि0 वाराणसी पृष्ठ 1508
3. नाट्य शास्त्र प्रथम भाग - का0हि0वि0वि0 वाराणसी, पृष्ठ 613
4. नाट्य शास्त्र प्रथम भाग पृष्ठ 613
5. नाट्य शास्त्र का0हि0वि0वि0 वाराणसी पृष्ठ 613
6. भाव प्रकाशन - गायकवाड ओ0सं0सी0 बड़ौदा पृष्ठ 208

को अभय प्रदान करता है अतः भयानक रस भी वीर रस का आश्रित होने के कारण धर्म पुरूषार्थ हेतु उपयोगी है।

'मोक्ष' स्वरूप पुरूषार्थ में 'शान्त' एवं 'वीभत्स रस' उपयोगी होते हैं। परन्तु मोक्ष स्वरूप पुरूषार्थ ब्राह्मण में ही सम्भव है, अतः काव्य अथवा नाट्य में इसका प्रधान रूप से वर्णन असम्भव है।[1] इस प्रकार विभिन्न रस किसी न किसी पुरूषार्थ की किसी न किसी प्रकार से सिद्धि करते हैं।

अतः स्पष्ट है कि रस का स्थान काव्य अथवा नाट्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतएव काव्य में रस बोध हेतु हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन ने रसाभिव्यक्ति हेतु पांच बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक बताया है -

1. विभाव, स्थायी भाव, अनुभाव और संचारी भाव के औचित्य से सुन्दर ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा का निर्माण।
2. उस कथा का रसानुकूल संस्करण ।
3. रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से सन्धि और सन्ध्यंकों की रचना।
4. यथा स्थान रस के उद्दीपन एवं प्रशमन की योजना प्रधान रस का आदि से अन्त तक अनुसन्धान।
5. अलंकारों का रसोचित सन्निवेश।[2]

तात्पर्य यह है कि कथा शरीर के निर्माण में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव के औचित्य का सतत ध्यान रखना चाहिए। नायकादि की प्रकृति के अनुकूल ही उत्साहादि भावों का अभिव्यंजन होना चाहिए। यथा उत्तम प्रकृति के राजा का उत्तम प्रकृति के राजा का उत्तम प्रकृति नायिका के साथ ग्राम्य-संभोग वर्णन नितान्त अनुचित होता है क्योंकि यह माता-पिता के संभोग के समान अत्यन्त असभ्य माना गया है।[3] कहने का सार यह है कि

---

1. नाट्य शास्त्र प्रथम भाग का०हि०वि०वि० वाराणसी, पृष्ठ 613
2. ध्वन्यालोक 3/10 - 14
3. बृहत्त्रयी रस विवेचन पृष्ठ 373

रस भंग का सबसे बड़ा कारण अनौचित्य है। आचार्य भामह के औचित्य विषयक मत को आचार्य आनन्दवर्धन ने स्वीकार करते हुए कहा है -

"औचित्याद्दृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।।[1]

इतिवृत्त के चयन के सम्बन्ध में भी औचित्य का सदा ध्यान रखना चाहिए। विभावादि के अनुकूल चुना गया इतिवृत्त ही रस का व्यंजक बनता है। सन्धियों एवं सन्ध्यंगो की योजना भी रस की दृष्टि से करनी चाहिए। रस का यथा अवसर उद्दीपन एवं प्रशमन होना चाहिए और आरम्भ किए हुए अंगी रस को मन्द पड़ता हुआ देखकर उसका पौनः पुन्येन अनुसंधान करना चाहिए। अंगी रसों की योजना इस प्रकार करनी चाहिए कि वे अंगी रस के निर्वाह में किसी भी प्रकार से बाधक न हों।[2] अलंकारों के यथेच्छ प्रयोग की पूर्ण शक्ति होने पर भी रस के अनुकूल ही अलंकारों की योजना करनी चाहिए।

रसाभिव्यक्ति के इच्छुक कवि के लिए काव्य में रस विरोधी तत्वों का परिहार भी आवश्यक है। आनन्दवर्धन ने रस भंग के पांच हेतु बताये हैं -

1. विरोधी रस के विभावादि का उपादान करना।
2. रस से सम्बद्ध होने पर भी अन्य वस्तु का अधिक विस्तार से वर्णन करना।
3. असमय में रस को समाप्त कर देना अथवा अनवसर में उसका प्रकाशन करना।
4. रस का पूर्ण परिपोष हो जाने पर भी बार-बार उसका उद्दीपन करना।
5. वृत्ति अर्थात् व्यवहार का अनौचित्य।

---

1. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड - वाराणसी पृष्ठ 190
2. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड - वाराणसी पृष्ठ 213

प्रस्तुत रस के विरोधी विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी अथवा संचारी भाव का ग्रहण करना, रस भंग का हेतु होता है। प्रस्तुत रस से यथाकथचिंत् सम्बद्ध भी वस्तुअन्तर का विस्तार के साथ वर्णन करना ,भी रस भंग का हेतु बनता है। जैसे विप्रलम्भ श्रृंगार के प्रसंग में पर्वतादि यमकादि अलंकारों से युक्त सविस्तार वर्णन करना। अनवसर के प्रसंग में रस का विराम भी रसभंग का कारण बन जाता है एवं अनवसर में रस का प्रकाशन वैरस्य लाता है। जैसे संग्राम छिड़ जाने पर श्रृंगार रस का प्रकाशन करना। परिपुष्ट हुए रस का पुनः पुनः उद्दीपन भी बार-बार के स्पर्श से मुरझाये हुए पुष्प के समान रसापकर्ष का कारण बन जाता है। व्यवहार का अनौचित्य भी रसभंग का कारण है, जैसे नायिका का नायक के प्रति अपने भ्रूभंग आदि के द्वारा अभिलाषा व्यक्त करना उचित है, किन्तु ऐसा न करके यदि वह स्वयं संभोग की अभिलाषा को प्रकट करने लगे तो यह व्यवहार का अनौचित्य होगा। इसी प्रकार धीरोदात्त नायक के कातर पुरूषोचित अधिकता या उतावलेपन का प्रदर्शन भी वृत्ति का अनौचित्य होगा।[1]

अतएव रस के स्वरूप को आचार्य मम्मट ने इस प्रकार कहा है -

कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणी यानि च
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि च चेन्नाट्यकाव्ययोः
विभावानुभावस्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः
व्यक्तः स तै विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।[2]

अर्थात् जो रस के कारणभूत विभावादि हैं उनका लोक से विलक्षण स्वरूप बतलाया है, सामान्यतः रस का स्वरूप यह है कि - विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से परिपुष्ट होकर रति आदि स्थायी भाव आस्वादन योग्य हो जाते हैं तथा रस कहलाते हैं। सामान्यतः हम यह कह सकते हैं कि मानव

---

1. ध्वन्यालोक - ज्ञानमण्डल लिमिटेड - वाराणसी पृष्ठ 213

हृदय में स्नेह (रति) इत्यादि कुछ भाव अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहते हैं जिसे साहित्य मर्मज्ञों ने स्थायी भाव कहा है। इन्हीं स्नेह आदि भावों के उद्‌बोध का जो लोक में कारण भूत होता है अर्थात् स्नेह (रति) आदि और दूसरा परिपोषक कारण चन्द्रोदय आदि हैं वही कवियों द्वारा आलम्बन और उद्‌दीपन विभाव कहा जाता है।

संक्षेप में रसास्वादन इस प्रकार है - सहृदयजनों के हृदय में रति आदि भाव वासना रूप में सदा विद्यमान रहता है आलम्बन विभाव के द्वारा आर्विभूत हो जाता है और उद्‌दीपन विभाव द्वारा प्रदीप्त होता है, अनुभाव उसे प्रतीति योग्य बनाता है एवं व्यभिचारी भाव उसको परिपुष्ट कर देता है।

इस प्रकार इन सबके संयोग से स्थायी भाव व्यंजना वृत्ति द्वारा व्यक्त हो जाता है अर्थात् आस्वादन योग्य हो जाता है, इसे ही रसवादी आचार्यो ने रस कहा है।

भरतकाल से लेकर आज तक रस पर विवेचन होता रहा और कई विद्वान अपनी-अपनी कुशाग्र बुद्धि से इसका विश्लेषण करते आये हैं। इस भरतकाल में केवल नाटक का ही तत्त्व था। काव्य में स्थान नहीं पाया और काव्य के अन्तर्गत नाटक की भी गणना होने लगी। नाटक में सहृदय को कैसे रसानुभूति होती है उसके सम्बन्ध में भरत मुनि का यह रस सूत्र है - "विभावानुभाव व्यभिचारिभिः संयोगाद्रसनिष्पत्तिः।" इति अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[1] यह रस सूत्र ही आगे चलकर सम्पूर्ण रस विचारकों केन्द्र बिन्दु बन गया है और रस सूत्र के रूप में विख्यात हो गया। इसका उल्लेख सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशस्त्र में किया।

भरत मुनि के इस रस सूत्र की व्याख्या में ही उत्तरवर्ती आचार्यो ने अपनी शक्ति लगायी है जिसके परिणाम स्वरूप 1. भट्टलोल्ट का उत्पत्तिवाद

---

1. रस मीमांसा पेज नं0 8

2. शङ्कुक का अनुमितिवाद 3. भट्टनायक का भुक्तिवाद 4. अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद। इन चार सिद्धान्तों का विकास हुआ। इन चारों सिद्धान्तों की व्याख्या वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने इस प्रकार की है।

सर्वप्रथम मीमांसाशास्त्र के अनुयायी भट्टलोल्लट के मत में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से अनुकार्य राम आदि में रस की उत्पत्ति होती है उनमें भी विभाव सीता आदि मुख्य रूप से रस के उत्पादक होते हैं, अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करने वाले होते हैं और व्यभिचारी भाव उस उत्पन्न हुए रस के परिपोषक होते हैं। इस प्रकार रस में आये हुए संयोग और निष्पत्ति के तीन अर्थ होते हैं अर्थात् स्थायी भावों के साथ रस का उत्पाद्य उत्पादक भाव सम्बन्ध होने पर रस की उत्पत्ति होती है, अनुभाव के साथ गम्यगमक भाव सम्बन्ध होने पर रस की प्रतीति होती है तथा व्यभिचारी भावों के साथ पोष्य पोषक भाव सम्बन्ध होने पर रस की पुष्टि होती है।[1]

इस प्रकार न्याय सिद्धान्त के अनुयायी शंकुक ने इसकी व्याख्या दूसरे प्रकार से की है। उन्होंने अनुमाप्य अनुमापक सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार नट कृत्रिम रूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है परन्तु उसके सौन्दर्य के बल से उसमें वास्तविकता की सी प्रतीति होती है। उन कृत्रिम अनुभाव आदि को देखकर सामाजिक नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी रस का अनुमान कर लेता है और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है। यही अनुमीतिवाद है।[2]

इसी प्रकार सांख्य सिद्धान्त के अनुयायी भट्टनायक ने अपने सिद्धान्त 'भुक्तिवाद' की स्थापना के लिए शब्द में स्वीकृत अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त दो - भावकत्व एवं भोजकत्व रूप दो नये व्यापारों की कल्पना की है। उनके

---

1. काव्य प्रकाश - श्री निवास शास्त्री, पेज नं0 125, 1985
प्रकाशक - साहित्य भण्डार, साहित्य प्रकाशक, मेरठ

मतानुसार अभिधा या लक्षणा से काव्य का जो अर्थ उपस्थित होता है उसको शब्द का भावकत्व व्यापार परिष्कृत कर देता है और उसे सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है इस 'भावकत्व' व्यापार' से काव्य का अर्थ साधारणीकरण हो जाता है तब शब्द का भोजकल नामक तीसरा व्यापार सामाजिक को रस का साक्षात्कारात्मक भोग कराता है, यही 'भुक्तिवाद' कहलाता है।[1]

इसी प्रकार अलंकार शास्त्र के अनुयायी अभिनव गुप्त ने 'अभिव्यक्तिवाद' की स्थापना की है। उनके मतानुसार सामाजिक मत स्थायी भाव ही रसानुभूति का निमित्त होता है तथा तन्मयीभाव के कारण वेद्यान्त सम्पर्क शून्य ब्रह्म स्वाद के सदृश परमानन्द रूप में रस अनुभूत होता है। यह अलंकारिकों का मत है, उन्होंने रस की अलौकिकता को सिद्ध किया है। अभिनव गुप्त रस का मूल मनः संवेग अर्थात् वासना या संस्कार रूप में रति आदि स्थायी भाव सामाजिक आत्मा में स्थित रहता है और उसी की अभिव्यक्ति होती है। वही 'अभिव्यक्तिवाद' है।[2]

काव्य में रस योजना :

'बृ.क.श्लो. सं.' नामक यह महाकाव्य श्रृंगार प्रधान रूप है और रति प्रधान भाव। किन्तु उत्साह, ह्रास, विस्मय जुगुप्सा, शोक, क्रोध, वात्सल्य आदि भावों की भी यथास्थान अत्यन्त मनोरम व्यंजना हुई है। महाकाव्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौण रूप में रखने का नियम रखा गया है।[3] क्योंकि जीवन में सदा एक ही रस या भाव नहीं बना रहता है - कभी ह्रास-परिहास, रोदन-विलाप, कभी उत्साह है तो कभी अपार शोकावेग, कभी वात्सल्य की रस-रस धार बहती है तो कभी जीवन में प्रचण्ड ताण्डव देखने को मिलता है। इस बहुरंगी रूप में ही जीवन का स्वारस्य है, अतः काव्यों में सभी या अनेक रसों की उपलब्धी

---

1. काव्य प्रकाश, श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, साहित्य प्रकाशक मेरठ पेज नं0 126-127
2. काव्य प्रकाश, पेज नं0 129
3. अंगानिसर्वेऽपि रसाः ।। साहित्य दर्पण ।। 6/317

अथवा उपस्थिति उचित अथवा स्वाभाविक ही समझ पड़ती हैं। इस महाकाव्य संयोग और वियोग या विप्रलम्भ श्रृंगार दोनों का वर्णन आया है।

श्रृंगार रस :

विवेच्य कृति "वृ0क0श्लो0 सं0" में श्रृंगार प्रधान रस है और रति प्रधान स्थायी भाव है। इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर श्रृंगार रस के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं यथा - स्त्रियां प्राकृतिक रूप से भीरू होती है कुमारी चन्द्रिका उलूक ध्वनि जो निश्चय ही सुनने में भयभीत कर देने वाली थी को सुनकर दूसरी ओर मुख कर भयभीत हो गयी और तेजी से दौड़कर अपने पति के आलिंगन में आ गयी। इसीलिए पत्नी के द्वारा विरक्त हुआ पुनः उलूक ध्वनि के भय के कारण आलिंगन किया गया। वस्तुतः यह आलिंगन उलूक ध्वनि के भय के कारण था फिर भी अपनी पत्नी को डराकर आलिंगन में लाने का धन्यवाद दिया।[1] दूसरी तरफ मोर की उत्कण्ठित ध्वनि को सुनने पर उसे सुनने के लिए उत्कण्ठा से आलिंगन का त्याग कर पराङ.मुखी हुई तो राजन् मोर पर अत्यन्त क्रोधित हुआ। यहाँ पर श्रृंगार रस को अंगी रस के रूप में वर्णन किया है।[2]

एवं अन्य स्थान पर अवन्ति देश का राजा अवन्तिवर्धन एक बार वनमें शिकार खेलने के लिए गया। लौटते समय मार्ग में एक अत्यन्त सुन्दर कन्या को वन झूला झूलते देखा, वह कन्या कालिंदी नदी के तट पर झूला झूलते हुए गाना गाते हुए स्वयं में अत्यन्त आनन्दित हो रही थी। राजा उसे छिपकर बहुत

---

1. वृ0 कथा श्लो0 सं0, विंसति सर्गः
तयोलूकध्वनिं श्रुत्वा भीरूनारीविभीषणम् ।
त्रस्तयातः परावृत्यः गाढमालिंगितः पतिः ।।48।।
ततो निरक्त भार्येण भार्यारक्तेन चामुना ।
उलूकभयपूर्वोऽपि कान्ताश्लेषोऽभिनन्दितः ।।49।।
तेन पूजामुलूकस्य सुहृदः कृतवानयम् ।
येन विमुखी कान्ता त्रासदभिमुखी कृताः ।।50।।

2. वृ0कथा श्लो0 सं0 विंशति सर्गः
श्रुत्वा च शिखिनः केका कान्तोत्कण्ठाविधायिनीः ।

देर तक देखते रह गये। इस प्रकार बार-बार देखे जाने के कारण कन्या ने उसे देख लिया और लज्जावश झूले से उतरकर तेजी से भाग गयी। राजा वहां से महल लौट कर स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर एकान्त में खुशी से झूमते हुए उस कन्या के बारे में सोचने लगे। इस प्रकार प्रतिदिन एकान्त में रहने लगे और धीरे-धीरे राजा की भूख, निद्रा सब गायक हो गयी। राज्य के धार्मिक कार्यो सांसारिक कार्यो कलाप से विमुख रहने लगे। इस प्रकार राजन उस कन्या सुरसमंजरी में आसक्त हो गये।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर वियोग श्रृंगार के भी उदाहरण देखने को मिलते हैं। यथा - पुंक्वस्क का दामाद 'विश्विल' अपनी पत्नी रत्नावली से बहुत समय तक लगातार दूर रहता था। जिसके कारण रत्नावली अपने पति के वियोग से लगातार आंसूओं के प्रवाह के कारण मुख कान्ति मलिन हो गयी थी और नेत्र सूजे हुए थे। पति वियोग के दुःख से वह चिन्तित होकर लगातार एकटक नासिका के अग्रभाग को देखती रहती थी, ओंठ अत्यन्त लाल वर्ण के हो गये थे सिन्दूर विहीन मांग वाली हो गयी थी, अत्यन्त शोक के कारण बिखरे केशों वाली गई थी, शरीर इतना दुर्बल हो गया कि हाथ के कंगन गिरने लगे, कटि प्रदेश इतना क्षीण हो गया कि करधन भी ढ़ीली होकर स्वयं गिरने लगी।[2]

करूण रस :

करूण रस जिसका 'शोक' स्थायी भाव है। श्रृंगार रस के साथ ही साथ करूण रस का अपार शोकावेग वर्णन भी इस महाकाव्य में कहीं-कहीं पर परिलक्षित होता है। यथा - जब राजा महासेना द्वारा प्रजा की आन्तरिक

---

1. बृ0 क0 श्लो0 सं0 पंचम सर्गः तृतीय सर्गः 3-9 श्लोक
2. बहुकाल प्रयातेऽपि पत्यौ रत्नावली मुखम् ।
   संतताश्रुजलासारधौतं ग्लानकपोलम् ।।235।।
   आयताशीतनिश्वास नासाग्राहितलोचनम् ।
   दन्तावरणसंस्कार शून्यमागलितालकम् ।।236।।
   विस्रंसमानरशनं जघनं मलिनांशुकम् ।
   नदधाति स्म शोकान्धाबाहु चस्खलदगंदौ ।।237।।
   (बृहत्कथाश्लोक संग्रह - पंचम सर्गः)

स्थिति को जानने के लिए जब रात्रि को वेशभूषा बदल कर गये। तब रात्रि में ही एक मन्दिर के पीछे एक प्रेमी-प्रेमिका को बात करते सुना कि - यदि तुम मुझे इतना ही चाहते हो तो मेरे पति की हत्या क्यों नहीं कर देते, यदि तुम इस पाप को करने से डरते हो तो स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि मुझे नहीं चाहते यह विवाद बढ़ाने का विषय नहीं है। तुम इस राज्य के उपहास योग्य कानून को मत देखो क्योंकि राजा ने सुख में अन्धा होकर अपने ही पिता जो कि राज्य का एक अच्छा बालक था, की हत्या कर दी। राजा महासेना यह सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ और महल आकर विवाद से ग्रस्त होकर किसी तरह से शेष बची हुई रात्रि को जगते हुए व्यतीत किया।[1]

प्रथम अंक में ही एक दूसरे स्थान पर राजा महासेना केश मुंडवाकर वल्कल वस्त्र धारण कर हाथ में कमण्डल लेकर सन्यासी रूप धारण कर जब वन जाने के लिए महल से बाहर लिकने, तब उन्हें इस रूप में देखकर रानी विवाद से ग्रस्त होकर अत्यन्त दुःख से अपनी छाती पीटकर विलाप करने लगी। उनके नेत्र दुःख से आंसूओं से पूर्ण रूप से भर आयीं।[2]

---

1. वृ० क० श्लो० सं० - प्रथम सर्गः

सुदुःश्रवमिदं श्रुत्वा गोपालो दुर्बधं वचः ।
गच्छन्नन्यत्र शुश्राव ध्वनिं विप्रस्य जल्पतः ।।28।।
किमार्यपुत्रेण यदा राज्ञा पिता हतः ।
श्रुति स्मृतिविदित्येतदुवाच ब्राहाणी पतिम् ।।32।।
श्रुत्वैर्वामादि कौलीनं प्रविश्यान्तःपुरं नृपः ।
अनयत्क्षणदाशेषसंमीलित लोचनः ।।33।।

2. वृ० क० श्लो० सं० प्रथम सर्गः

तयोस्तु गन्तयोः केशान्वापयित्वा स वल्कलः ।
कमण्डलुसनाथश्च भूपालो निर्ययौ गृहात् ।।64।।
विषादविलुप्ताक्षेण वक्षोनिक्षिप्तपाणिना ।
दृश्यमानोवरोधेन विवेशास्थानमण्डपम् ।।65।।

इस महाकाव्य के दशम सर्ग में जब राजकुमार नरवाहन दत्त वन में एक कन्या द्वारा सेवा शुश्रूषा किया जाता हुआ अन्त में जब वह अपने राज्य वापस आने लगा तब राजा ने देखा कि उस कन्या के नेत्रों से बहुत आंसू गिरे हैं और दुःख से आवाज मन्द हो गयी एवं लड़खड़ाने लगी, एक स्तम्भ के पीछे छिपकर उस कन्या को सिसकते हुए पाया और राजा द्वारा नरवाहन दत्त द्वारा देखे जाने पर उसने दोनों हाथों से अपना मुख ढ़क लिया। कुमार नरवाहनदत्त ने कहा - वत्स के राजा के सुशासन में यहाँ इस देश में चलते फिरते जीवों पर यह दुःख कहाँ से आया फिर भी जब वह बार-बार पूछने पर कुछ नहीं बोली, निराश हो गया और मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, कन्या ने आंसूओं के साथ रोते हुए राजन् से कहा - आप भाग्यशाली हैं पद्मदेविका आपका सहारा है, इसके अतिरिक्त मेरे दुःख का कोई अन्य कारण नहीं है।[1]

हास्य रस :

शृंगार, करूण, क्रोध आदि रसों के साथ-साथ हास्य रस के प्रसंग भी कहीं-कहीं पर दृष्टिगोचर होते हैं। यथा - वत्स देश में कौशाम्बी नामक देश के राजा उदयन थे उनका प्रिय एवं अभिन्न मित्र वसन्तक था। एक बार [illegible] ......

मित्रों में से एक ने प्रश्न किया कि आप दोनों में से प्रत्येक के कितने पुत्र हैं उनके प्रश्न पर राजा के प्रिय बसन्तक ने हंसने के लिए मजाक किया - महाराज। हम आपके प्रति समर्पित हैं, आप हमारे स्वामी हैं, हमारे मालिक के समान हैं। एक मालिक की तरह हमारे बहुत से पुत्र हैं, हम सभी आपके

---

1. बृ0 क0 श्लो0 सं0 दशम सर्गः

अथपरस्मिन्दिवसे गत्वार्यदुहितुर्गृहम् ।
शोकभूकप्रवृद्धास्रमपश्यमबलाजनम् ।।64।।
करद्वयावृतमुखी स्तम्भे लग्ने पराङ.मुखी ।
मन्दशब्दं मयादृष्टा क्रन्दती पद्मदेविका ।।65।।

आदेश का पालन करेंगे। इस पर यौगन्धरायण ने कहा - ! वसन्तक तुम्हारा मुख बिना अवसर के ही खुला रहता है।[1]

इस प्रकार एक अन्य स्थान पर राजकुमार नरवाहन दत्त जब अपने सेनापति और मित्र हरिशिखा, रूमण्वन, तपन्तक और गोमुख के साथ वन में शिकार खेलने के लिए गये। सिंहशत्रु नाम वनाधिपाति के साथ वन में घूमने लगे एक स्थान पर हंस का पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गये, एक स्थान पर नरवाहन-दत्त घने वृक्ष के नीचे अपने घोड़े से उतर कर छाया में बैठ गये और कहा मैं बहुत थक गया हूँ तब गोमुख ने मजाक करते हुए कहा - राजन् आपके पास कितने हिरन हैं जिनका आपने शिकार किया है।[2]

इस अन्य स्थान पर कुमार नरवाहन-दत्त के विवाह के समय जब रानी राजा द्वारा सभी को निमन्त्रित कर दिया गया। इसके पश्चात तपन्तक को दुल्हन देखने के लिए वधू पक्ष की ओर भेजा गया। तपन्तक वेश बदलकर वहां गये फिर भी पहचान लिए जाने पर ज्येष्ठ रानी द्वारा एक बड़े और कोलाहल से परिपूर्ण कमरे में ले जाये गये और कन्याओं द्वारा परिहास वश तपन्तक के मुख और वक्ष स्थल काली स्याही से पोत दिया गया। तपन्तक क्रोध से कांपता हुआ वापस आया और कहा आर्य-पुत्र। मेरे इस अपमान को देखिए। आपकी सास ने मेरा इस प्रकार अपमान करने के बाद कहा - तुम दुष्ट हो, पकड़ लिए गये हो परन्तु क्या तुम सचमुच उनके द्वारा भेजे गये हो।[3]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - सप्तम सर्गः

2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - सप्तम सर्गः

3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - सप्तविंश सर्गः

अद्भुत रस :

अद्भुत रस का स्थायीभाव 'विस्मय' है। विस्मय सूचक भी कुछ उदाहरण इस महाकाव्य में परिलक्षित होते हैं।

यथा - रानी मृगयावती का गरूड़ पक्षी द्वारा अपहरण कर लिए जाने पर ऋषि वशिष्ठ के शिष्यों द्वारा बचाये जाने के पश्चात उन्हीं के आश्रम में रहते हुए राजकुमार उदयन को जन्म दिया। शिक्षा-दीक्षा में प्रवीर्ण हो जाने के पश्चात एक बार उदयन गुरूजनों द्वारा रोके जाने के बावजूद शिकार खेलते हुए बहुत दूर निकल गये, वहां पर उन्होंने एक विचित्र सरोवर देखा। जो कि अत्यन्त विस्मयकारी और ऊपर से शान्त सरोवर था परन्तु नीचे नागसेना की भोगवती नामक नगरी थी। उस सरोवर में सुन्दर लाल नेत्रों वाले सर्पो के जोड़े तैर रहे थे। जो कुमार उदयन को देखते ही अपनी लम्बी भुजाओं को देखा और गहरे पानी में चले गये।[1]

दूसरी तरफ - पत्थर यन्त्र धूलयन्त्र, जल यन्त्र का वर्णन भी अत्यन्त विस्मयकारी था जिसके बारे में सभी ने मात्र सुना ही था। परन्तु आकाश यन्त्र, के बारे में किसी ने नहीं सुना था और न ही देखा था सम्भवतः ग्रीक वासी ही जानते थे। विश्विल द्वारा आकाश यन्त्र नामक यान के बनाये जाने पर राजा उससे विचरण करने लगे। यह यान आकाश मार्ग से चलता था और इसे इच्छानुसार स्थान पर रोका जा सकता था।[2]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह चतुर्थ सर्गः
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह पंचम सर्गः

रौद्र रस :

रौद्र रस जिसका स्थायी भाव रौद्र है। इस महाकाव्य में कहीं-कहीं पर क्रोध का प्रचण्ड ताण्डवं देखने को मिलता है। यथा - एक बार सुरसमंजरी के पिता इफ्फक नामक दुष्ट मातभागी विद्या में प्रवीर्ण अधम पुरूष का सुरसमंजरी के साथ विवाह करने का वचन दिया। एक बार जब वह इफ्फक आकाश मार्ग से विचरण करते हुए जा रहा था, मार्ग में उसकी माला मधुमक्खियों से घिर गयी। इफ्फक ने वह माला ऊपर से ही तेजी से फेंक दी। फेंकने पर वह सांप की तरह माला पर्वत पर तपस्या कर रहे नारद मुनि के गले में गिर पड़ी और सांप की तरह नारद मुनि के गले में लपेट उठी। इस पर नारद मुनि ने क्रोध से अत्यन्त लाल नेत्रों से देखा और क्रोध से तेजी से चिल्लाये और शाप दे दिया - यह किसकी माला है? जिसने मेरे शरीर को दूषित करके, मेरी तपस्या को भंग किया है? जिसकी भी यह माला है वह अछूत मनुष्य होवे।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर शिल्पियों द्वारा आकाश यन्त्र बनाने के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त करने पर राजा क्रोधित हुआ और चिल्लाया - शठ्ता छोड़ दो और मेरा आदेश मानो और आकाश यन्त्र नामक यान बनाओ अन्यथा इस जीव लोक को अच्छी तरह देख लो।[2]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह तृतीय सर्गः

2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह पंचम सर्गः

एक अन्य स्थान पर उल्लूक ध्वनि को सुनकर भय के कारण तेजी से अपने पति के प्रगाढ़ आलिंगन में आयी हुई। अचानक मोर की उत्कण्ठित केंके ध्वनि से आलिंगन से पराड.मुखी होने पर राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ। अत्यन्त क्रोध में कहा - जिसने भी यह कूंज की आवाज करके मेरी पत्नी को पराड.मुखी कर दिया है उस मोर की गर्दन यथाशीघ्र काट दिया जाय।[1]

शान्त रस :

नाट्य अर्थात् अभिनयात्मक काव्य में रस आठ ही होते हैं, किन्तु श्रव्य या पाठ्य काव्यों में शान्त रस नामक रस को नवम् रस माना गया है। 'अवस्थानुकृतिं नाट्यं' अर्थात् अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है।[2] इसमें शान्त रस की कोई सम्भावना नहीं रहती क्योंकि शान्त रस का स्वरूप तो सर्वविषयोपरति मात्र है और रोमांचादि के बिना किसी भाव का अभिनय नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त संगीत आदि का भी शान्त रस के साथ विरोध है। इसी हेतु दशरूपककार ने नाट्य में शान्त रस की पुष्टि का स्पष्ट विरोध किया है -

रत्युत्साह जगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।
शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।।[3]

परन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि नाट्य में शान्त रस भी होता है। जैसे - नागानन्दादि नाटक में शान्त रस की प्रधानता है शान्त रस विषयक गीत वाद्य का भी उसके साथ नहीं है। अतः शान्त रस नामक नवम् रस की सत्ता स्वरूपतः सिद्ध है। आचार्य मम्मट ने नाट्य और काव्य दोनों के लिए सामान्य रूप से

---

1. वृ0 क0 श्लो0 सं0 - विंशति सर्गः

तेनानेन मयूरस्य मस्तकश्छेदितो रूषा ।
येनास्याभिमुखी कान्ता कूजता विमुखी कृता ।।52।।

2. दशरूपक प्रथम प्रकाश पृष्ठ सं0 6

3. दशरूपक चतुर्थ प्रकाश पृष्ठ सं0 352

सर्वसम्मत आठ रसों का निरूपण किया है परन्तु 'शान्तोऽपि नवम् रसः स्मृतः' कहकर यहां नाट्य या श्रव्य दोनों में ही शान्त रस की सत्ता स्वीकार की है।

शान्त रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। इसे 'शम' भी कहते हैं। शम या निर्वेद का अभिप्राय है - वैराग्य दशा में आत्म-रति से होने वाला आनन्द - शमोनिरीहावस्थायामात्मविश्रामजं सुखम्।।[1]

मिथ्या रूप से भाव्य मान जगत ही शान्त रस का आलम्बन है। पवित्र आश्रम, तीर्थ महापुरूष आदि उसके उद्दीपन हैं, रोमांच आदि अनुभाव हैं तथा स्मृति मति, जीव दया आदि इसके व्यभिचारी भाव अपना संचारी भाव है।

शान्त रस की मान्यता के विषय में आचार्यो में मतभेद रहा है। नाट्य शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि ने शम को अतिरिक्त रस माना है - क्वचिच्छमः। आचार्य अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में 'शान्त रस' की मान्यता का पूर्ण रूप से समर्थन किया है। उनके मतानुसार मोक्ष रूप पुरूषार्थ की प्राप्ति की दृष्टि से शान्त रस की स्वीकृति आवश्यक ही है। दशरूपककार धनंजय ने यद्यपि नाट्य में शान्त रस को स्वीकार नहीं किया तथापि उसे काव्य का विषय तो माना ही है। धनंजय के मतानुसार शम के प्रकर्ष रूप शान्त रस का वास्तव में मुक्तावस्था में ही आर्विभाव हो सकता है अतएव वह अनिर्वचनीय है तथापि तदुपापभूत मुदिता मैत्री करूणा उपेक्षा - ये चार अवस्थायें हैं और उनमें चित्त का विकास आदि होता है इसीलिए चित्त के विकास आदि निरूपण के द्वारा शान्त रस का आस्वाद भी निरूपित सा ही समझा जा सकता है। यथा - विवेच्य कृति वृ0 क0 श्लो0 सं0 में द्रष्टव्य है कि राजा मृगछाल पहनकर और अपना सर घुटवाकर वृद्ध राजा जिसके कंधे पर कमण्डल लटक रहा था, क्षीण सांसारिक

---

1. साहित्य दर्पण, तृतीय प्रकाशः, पेज नं0 180

इच्छाओं वाले जो काश्यप तथा अन्य ऋषियों द्वारा सिखायें गये थे ऐसे राजा नीलगिरि पर्वत पर तपस्या के लिए गये।[1]

एक दूसरे स्थान पर राजा वेगवान अपनी पत्नी, मंत्रि मित्र परिवार तथा सभी भोग विलास को छोड़कर, घर को तृण के समान मानकर राजा अपनी प्रकृति को सत्य, रज और तम के कलंक से दूर करके तपोवन चले गये।[2]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में - अपराध को करके तुम्हारे कष्टों की पीड़ा शान्त करने के लिए, प्रायश्चित करने के लिए वन जा रहा हूँ। मुझे वहां जाने से कोई न रोके। इसके पश्चात वन में एकान्त में पहुंचकर तपस्या करने लगे।[3]

वात्सल्य रस :

काव्य अथवा नाट्य में श्रृंगार हास्य, करूण आदि आठ ही रसों की सत्ता स्वीकार की गयी है परन्तु कछ विद्वानों ने 'शान्तोऽपि नवमो रसः' कहकर शान्त रस नामक नवम् रस की सत्ता काव्य अथवा नाट्य में स्वीकार की है। कतिपय आचार्यो ने साहित्य जगत में भक्ति तथा वात्सल्य को भी एक पृथक् रस सिद्ध किया है।

---

1. कृष्णाजिनाम्बरधरः कृतकेशनाशः ।
स्कन्धावसक्तकरको नृपतिः पुराणः ।
अध्यासित मुनिवरैः सह काश्यपेन
मन्दस्पृहोऽसितगिरिं तपसे जगाम् ।।

वृ.क.श्लो.सं. द्वितीय सर्ग 93 श्लोक

2. इति राज्यकलत्रमित्रपुत्रान
गृहधामं च तृणाम मन्यमानः ।
गुरूसत्वराजस्तमः कलंका
प्रकृतिं हातुमागाद्वानं नरेन्द्रः ।।

वृ.क.श्लो.सं. चतुदर्श सर्ग 28 श्लोक

3. तदिदं पातकं कृत्वा युष्मत्पीडाप्रशान्तये ।
प्रायश्चित्तं बृजन्कर्तुं न निवार्योऽस्मि केनचित् ।।

आचार्य रूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिन्धुः' और 'उज्जवलमणि' नामक ग्रन्थ में भक्ति रस का विस्तार पूर्वक निरूपण किया है। विश्वनाथ कविराज ने 'वात्सल्य' रस को मुनीन्द्र सम्मत बतलाया है।

स्फुट - चमत्करितया वत्सलं च रसं विदुः ।
स्थायी वत्सलता स्नेह पुत्राद्यलम्बन नतम् ।।[1]

इस प्रकार वात्सल्य रस की स्वतन्त्र सत्ता स्वयं सिद्ध है। पिता या माता का अपनी सन्तान के प्रति या उसी श्रेणी के अन्य प्रियजन के प्रति जो स्नेह होता है उसे वात्सल्य रस कहते हैं। उसमें भी रति भाव दूर से झांकना समझ पड़ता है। वात्सल्य भी रति भाव का दूसरा रूपान्तर कहा जा सकता है।[2]

वैसे भी आज के मनोविश्लेषकों ने धर्म भावना को काम का उन्नयन माना है परन्तु वात्सल्य रस को परिणति के अयोग्य मानना बहुत ज्यादती होगा क्योंकि वात्सल्य भाव सर्व प्रधान एषणा पुत्र एषणा से सम्बद्ध है। सभी विद्वानों ने मातृवृत्ति को एक प्रधान वृत्ति माना है। इसमें पुत्र के प्रति स्नेह मातृत्व भाव के द्वारा ही परिलक्षित होता है। वात्सल्य मानव जीवन की एक बहुत बड़ी भूख है जो तीव्रता और प्रभाव की दृष्टि से केवल काम से न्यून कही जा सकती है। वात्सल्य रस को श्रृंड्.गार रस के अन्तर्गत समाहित नहीं किया जा सकता। क्योंकि वात्सल्य रस पुत्र आदि के प्रति मातृत्व भावना के कारण ही उत्पन्न हो सकता है। कविवर सूरदास द्वारा वात्सल्य रस में रचित पदावलियों के अध्ययन से वात्सल्य रस की श्रृंड्.गार से भिन्न एक स्वतन्त्र रस के रूप में सत्ता प्रतीत होती है। यद्यपि संस्कृत साहित्य आठ ही रस माने गये हैं और अन्य सभी रस को इन्हीं आठ रसों में समाहित कर दिया है। कुछ विद्वानों ने 'शान्तोऽपि नवमोरसः' कहकर शान्त रस की नवम् रस के रूप में सत्ता स्थापित

---

1. साहित्य दर्पण 3/25। पेज नं0
2. काव्य प्रकाश : श्रीनिवास शास्त्री टीका, पेज नं0 142, प्रकाश साहित्य प्रकाशन, मेरठ

की है इसी प्रकार हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने वात्सल्य रस को भिन्न रस सिद्ध किया है जिसका स्थायी भाव 'वत्सल' है। वात्सल्य रस के बहुत से अत्यन्त सुन्दर विवेच्य कृति में परिलक्षित होता है - यथा - गोपाल पुत्र अपनी गेंद निकालने के लिए सिंहासन के नीचे झुकता है राजा उसे झुका हुआ देखकर पुत्र प्रेम से विह्वल होकर गोद में उठाकर सीने से लगा लेता है।[1]

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कुमार उदयन जिसका जन्म ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में हुआ था। चौदह वर्ष पश्चात पुत्र उदयन को देखकर हर्ष से इस तरह से विह्वल हुए कि मूर्च्छित होकर गिरते हुए क्षण भर के लिए पुत्र द्वारा सम्भाल लिए गए और पुत्र का आलिंगन किया।[2]

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में राजा वेगवान वन में सारा राज्य परिवार को तृण के समान मानकर वन में तपस्या के लिए चले गये, काफी समय पश्चात अपनी पुत्री वेगवती को जिसके नेत्र आंसूओं से गीले थे, जिसका मुख मार्ग से आते समय कुशों से खरोंच से ग्रस्त थे उसे देखकर इस तरह पुत्री प्रेम से द्रवित हो उठे कि प्रेम वश उसे अपनी गोद में उठाकर गले लगा लिया।[3]

इस प्रकार यहां पर श्रृड़्गार हास्य, करूण, अद्भुत एवं रौद्र रस का अद्भुत चित्रण किया है, इसी के साथ ही संस्कृत साहित्य में शान्त रस एवं वात्सल्य रस की सत्ता न होने पर भी साहित्य जगत में अलग से सत्ता सिद्ध करके बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।

---

1. स तु कन्दुमादातुमारब्धश्च नृपेण तु ।
   सिंहसनादवप्लुत्य परिष्वक्तप्रपानतः ।। वृ.क.श्लो.सं. 87 द्वितीय सर्ग
2. राजा तु पुत्रमालिङ्ग्य हर्षमूर्छाविचेतनः ।
   निपन्तधरणीपृष्ठे पुत्रेणालम्भितः क्षणम् ।। वृ.क.श्लो.सं. पंचम सर्गः 166

छन्दोयोजना

मूलतः छन्दस् शब्द की गणना वेद के छः अंगों में होती है, इसे वेद का चरण बताया गया है।[1] जैसे चरणविहीन व्यक्ति चल फिर नहीं सकता, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद अथवा कोई भी काव्य ग्रन्थ गतिशील नहीं हो पाता। शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, ज्योतिष् तथा छन्दस्। वेद के उन षडंगों में परिगणित होने के कारण छन्दशशास्त्र की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है।

'छन्दस्' शब्द का तात्पर्य :

छन्दशशास्त्र के प्रणेता महर्षि पिंगल माने जाते हैं। 'छन्दस्' शब्द 'छद्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है - 'आच्छादन करना' अथवा ढकना। इनकका छन्दः सूत्र उपलब्ध छन्दग्रन्थों में सर्वप्राचीन है। एक परम्परा के अनुसार इनको पाणिनी का अनुज कहा जाता है।

यास्क ने लिखा है - 'छन्दांसि छादनात्'[2] अर्थात 'आच्छादन' अथवा नियमन के कारण ही छन्द को 'छन्दस्' कहते हैं। यह आच्छादन भाव अथवा रस का होता है।

---

1. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
   ज्योतिषमंथनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोतुंमुच्यते
   शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
   तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।

2. निरूक्त दैवतकाण्ड

यह भी कहा जाता है कि प्राचीन काल में मृत्यु के भय से कुछ देवताओं ने गायत्री आदि मन्त्रों से अपने आपको ढक रखा था, इसी से 'मन्त्र' 'छन्दस्' कहलाने लगा। 'छन्दस्' एक प्रकार से 'पद्य' शब्द का पर्याय है क्योंकि पद्य बिना छन्द आधार लिए बिना लिखा ही नहीं जा सकता है।

वेदमन्त्रों की रचना छन्दों में हुई है, अतः इस अभिप्राय को लेकर छन्छस् शब्द की व्याख्या इस प्रकार भी की जाती है - छादयन्ति ह वा पापात् कर्मणः अर्थात् पाप कर्म से जो इन (मन्त्रों) को निवारित करते हैं, वे छन्दस् करते हैं।

'छन्दस्' शब्द 'चादयति आहलादने' (न्वादिगण धातु) से भी निष्पन्न माना गया है। चन्दयति आहलादयति इति छन्दः अर्थात् जो पाठकों को आह्लादित कर दे वही छन्दस् है। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में छन्द का लक्षण इस प्रकार दिया है - 'यदक्षर परिमाणं तच्छन्दंः' अर्थात् संख्या विशेष में वर्णो की सत्ता छन्द है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो शब्द किम्वा ध्वनि तरंगे में प्रसारित होती है जो जलोर्मियों के समान उठती और गिरती है। छन्द एक प्रकार का नियम है जो काव्य में श्रुतिगत माधुर्य और सौन्दर्य का सृजन करता है। छन्दः प्रयुक्त नियम या विधान यह सहृदय जन विदित तथ्य है। काव्य के इस मनोरम रूप या प्रकार पद्य कहते हैं - मुक्तक और प्रबन्ध इसके उपमेय हैं। अतएव छन्दो बद्धता के नियम को देखते हुए छन्द के विषय में यह कहा जा सकता है कि - "किसी रचना के प्रत्येक चरण में मात्राओं की अथवा वर्णो की नियम संख्या क्रम योजना एवं गति के विशेष विधान परस आधारित नियम को छन्द कहते हैं।

छन्दस् का महत्व :

यद्यपि वैदिक और लौकिक वाङ.मय में छन्दः शास्त्र का एक विशिष्ट स्थान है। इसी प्रकार काव्य का शरीर स्थानीय तत्त्वों में 'छन्दस्' का विशेष महत्त्व है। जैसे चरण के बिना प्राणी के शरीर में गति नहीं आती, उसी प्रकार काव्य या नाट्य में छन्दस् के बिना गति या प्रवाह नहीं आ पाता इसलिए छन्द को वेद रूपी मानव का चरणयुगल कहा गया है।[1]

वैदिक काल में छन्दस् देवताओं को प्रसन्न करने के साधन थे। अतः उनकी महत्ता भी दैवी और अलौकिक मान ली गयी थी। अन्य वेदांगों के साथ-साथ छन्दों का सहारा लेकर स्वर्ग-लोक और महिमा को प्राप्त किया जाता है।[2] पाणिनीय शिक्षा में छन्दस् को वेद पुरूष का पादस्थानीय माना गया है।

पाणिनीय शिक्षा में स्पष्ट लिखा है कि - स्वर, वर्ण और अर्थ संयुक्त छन्द का ज्ञान प्राप्त करके जो वेदों का अध्ययन करता है, वह ब्रह्म लोक का भागी होता है इसके विपरीत जो असावधानी से छन्दस् प्रयोग करता है वह पाप का भागी होता है। इस प्रकार छन्दों के शुद्ध प्रयोग से पुण्य और अशुद्ध प्रयोग से पाप की धारणा ने वैदिक छन्दों के स्वरूप को अक्षुण्ण अपरिवर्तित और अदोष रूप में संचित रखने में बड़ी सहायता की है। छन्दस् सम्बन्धी इस प्रकार के विश्वासों ने भाषा स्थिरता, संस्कारों के

---

1. छन्दः पादौ तुवेदस्य । (पाणिनीय शिक्षा 41/8)
   सिद्धान्त कौमुदी टीकाकार शिवदत्त शर्मा, क्षेमराज - श्रीकृष्णदास श्रेष्ठी मुंबई - 1998, पृष्ट 753
2. .... तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा 41/8)

निर्माण, छन्दस् पाठ की निश्चयात्मकता और उच्चारण की शुद्धता की रक्षा में पर्याप्त योगदान दिया है। छन्दों के माध्यम से काव्य को जो गरिमा और व्यवस्था प्राप्त होती है वह उसकी महत्ता और उपयोगिता का हेतु है।[1]

छन्दों का वर्गीकरण :

वस्तुतः छन्द दो प्रकार का होता है - मात्रक तथा वर्णिक।

'मात्रिक छन्द' उसे कहते हैं जो मात्रा गणों के सहारे लिखा जाता है। जैसे वार्णिक छन्द के गण तीन-तीन अक्षर के तथा आठ प्रकार के होते हैं, उसी प्रकार मात्रिक छन्द के गण चार-चार मात्रा के तथा पांच प्रकार के होते हैं।

'वृत्तरत्नाकर' में इसी तथ्य को स्पष्ट किया है -

श्रेया: . . . . ।

अर्थात् सर्वत्र, अन्त, मध्य तथा आदि में गुरू वर्ण जिनके हो अथवा चारों मात्रायें लघु हों - जैसे चार मात्रा के पांच गण आर्या आदि छन्दों में होते हैं।[2]

मात्रिक छन्द को दूसरे शब्दों में जाति तथा वर्णिक छन्द को वृत्त भी कहते हैं।[3]

---

1. .... हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम् ।
   ऋग्यजुः सामभिःयूतो ब्रह्मलोके महीयते ।।
   (पाणिनीय शिक्षा 55/10)
2. वृत्तरत्नाकरः - ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादिगुरूवोऽत्र चतुष्कलाः।
   गणाश्चतुर्लघूपेताः पंचार्यादिषु संस्थिताः ।।
3. पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरति द्विधा।
   वृत्तभक्षर संख्यात जातिर्मात्राकृता भवेत् ।। छन्दोमंजरी 1/4

यह वृत्त (वर्णिक छन्द) तीन प्रकार का होता है।[1]

1. समवृत्त - जिसके चारों चरण एक जैसे हो।
2. अध समवृत्त - जसके प्रथम एवं तृतीय चरण एक जैसे हों तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण एक जैसे हो।
3. विषमवृत्त - जिसके चारों चरण परस्पर भिन्न हो।

बृहत्कथा श्लोक संग्रह में छन्दस् व्यवस्था :

यद्यपि छन्दःशास्त्र में वर्णिक एवं मात्रिक के भेद से अनेक छन्दों का वर्णन मिलता है, किन्तु उनमें बहुत से 'छन्दस्' अछूते रह गये हैं। जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण में 13 छन्दों का 'महाभारत' में 18 छन्दों का और 'श्रीमद्भागवत' में 25 छन्दों का प्रयोग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार विवेच्यकृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' में भी 13 छन्दों का प्रयोग परिलक्षित होता है। इनके परवर्ती काव्यों में यह संख्या 50 तक पहुंची है। माघ कवि ने भी अपनी रचना में बहुत से छन्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार आचार्य बुधस्वामी ने इस महाकाव्य में 13 छन्दस् का प्रयोग किया है।

आचार्य बुधस्वामी ने इस महाकाव्य में कतिपय स्थलों को छोड़कर अनुष्टुप छन्दस् का ही प्रयोग किया। आचार्य बुधस्वामी ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्दस् परिवर्तन किया है परन्तु कहीं-कहीं मध्य में भी छन्दस् परिवर्तन कर दिया है।

---

1. द्रष्टव्य वृत्तरत्नाकर - छन्दोमंजरीकार गंगादास ने लिखा है -
समम‌र्धसमं वृत्तं विषमचेति त त्रिधां ।।

उपेन्द्रवज्रा छन्दस् :

इस छन्दस् के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते है। यति (विश्राम) चरण के अन्त में होता है। छन्दस् ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में उपेन्द्रवज्रा छन्दस् को कुछ इस प्रकार कहा गया है -

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौः ।।[1]

अर्थात् जिस छन्द में क्रमशः जगण, तगण, जगण और इसके पश्चात दो गुरू वर्ण आये उसे उपेन्द्रवज्रा छन्दस् कहते हैं।

इसी प्रकार 'छन्दोमंजरी' में उपेन्द्रवज्रा का लक्षण किया हैं -

उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौसा । 2/2[2]

जिस प्रकार महाकाव्य में उदाहरण द्रष्टव्य है -

अथाहमभ्रलिहश्रृंगचक्रं
ध्वजप्रभापीडितशक्रचापम् ।
प्रासादमारोहमुदारशोभं
शशीव पूर्वाचलराजकूटम् ।।[3]

---

1. वृत्तरत्नाकर 3/9 - श्री धरानन्दशास्त्रिणा - मोती लाल बनारसीदास
2. छन्दोमंजरी 2/2
3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - सप्तम् सर्ग 82 श्लोक

अर्थात् जब चन्द्रमा के पूर्वी दिशा में ऊँचे पर्वत के ऊपर चढ़ गया, तब मैं भी अत्यधिक सुन्दर महल की छत पर जिसकी मीनारें आकाश चूम रही थी और जिसकी पताका ने इन्द्रधनुष को ढक लिया था ऐसे महल की छत पर चढ़ गया।

यहां पर तीसरे चरण का प्रथम अक्षर लघु होना चाहिए, परन्तु उपर्युक्त श्लोक में दीर्घ मात्रा होने के कारण यहां पाददोष है।

इसी प्रकार एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

घनाघनाम्भोधरजाल कालीम्
अदृष्टतारागणराज बिम्बाम् ।
तया सह प्रावृषमासि रम्याम्
अशुक्लपक्षान्तनिशामिवैकाम् ।।[1]

अर्थात् उसके साथ आनन्दायक वर्षा ऋतु में घने वर्षा के काले बादलों और जो चन्द्रमा की तरह कभी नहीं देखी गयी थी, बीत जाने के पश्चात यह एक रात्रि के नवीन् चन्द्रमा की तरह अतीव सुन्दर था।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - 20 सर्गः 166 श्लोक

उपजाति छन्दस् :

उपजाति छन्दस् के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं, इसमें इन्द्रभाषा और उपेन्द्रवज्रा छन्दस् के मिश्रित लक्षण • होते हैं तभी इसे उपजाति छन्दस् कहते हैं।

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ यदीया वृपुजातयस्ताः ।[1]

अर्थात् जिस छन्द के दो चरण - इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के लक्षण से युक्त हों, उन्हें उपजाति छन्छस् कहते हैं।

अर्थात् इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्दस् के मिश्रण को उपजाति छन्दस् कहते हैं। यह मिश्रण चौदह प्रकार से सम्भव है। मिश्रण का यह अर्थ नहीं कि जिस किसी छन्दस् को मिला दिया जाय अपितु समान जाति के ही दो छन्दों परस्पर मिश्रण होगा न कि भिन्न जाति वाले छन्दों का यथा -

एतानि चान्यानि च नागराणां
पश्यन्विचित्राणि विचष्टितानि ।
चितानलालोकहृतान्धकारम्
अगच्छभुप्लीवजनाधिवासम् ।।[3]

यहां प्रथम एवं द्वितीय चरण में इन्द्रवज्रा का लक्षण एवं तृतीय तथा चतुर्थ चरण में उपेन्द्रवज्रा का लक्षण होने से उपजाति छन्दस् है।

---

1. वृत्तरत्नाकर - 3/30
2. छन्दोमंजरी - 2/3
3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - 20 सर्गः 92 श्लोक

वंशस्थ छन्दस् :

वंशस्थ छन्दस् के प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं। छन्दशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ में वंशस्थ छन्दस् को इस प्रकार परिभाषित किया है -

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।।

अर्थात् जिस छन्दस् के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण आये उसे वंशस्थ छन्दस् कहते हैं। पति (विश्राम) चरणान्त में होती है।

पिंगलेसूत्रेडस्य 'वंशस्था' इति नाम। तया च सूत्रम् - 'वंशस्था ज्यौ त्यौ इति। और कहीं-कहीं पर वंशस्थ विलम'। इति नाम्।।

छन्दोंमंजरी में इस छन्दस् को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है -

वदन्ति वंशस्थबिलं जतौ जरौ ।[2]

यथा -

अथोज्जन्याः कथमप्युमागतै

जरान्धजात्यन्धजडामकेरपि ।

दिध्क्षुः वर्त्सनरेन्द्र नन्दनं,

तपोवनं सप्रभदैस्तदावृत्तम् ।।

अर्थात् इसके पश्चात वत्स के राजा उदयन के पुत्र को देखने की इच्छा वाले लोगों की, वृत्रों की, नेत्रहीन लोगों की जन्मान्ध बच्चों की और महिलाओं की भीड़ से घिर गया और उज्जयिनी आकर लोगों को व्यवस्थित करने का वचन दिया।

---

1. वृत्तरत्नाकर - 3/46
2. छन्दोमंजरी - 2/4
3. बृहत्कथाश्लोक संग्रह - तृतीय सर्ग ।26 श्लोक

यहां उपरोक्त वंशस्थ छन्दोवद्ध श्लोक में दूसरे चरण के अन्तिम अक्षर में आवश्यकता अनुरूप लघु को गुरू मान लिया गया है। अतः यहां पादपूर्ति के लिए लघु को गुरू माना गया है। अतः यहां पाददोष है।

इसी प्रकार पाददोष रहित एक अन्य उदाहरण में स्पष्ट है -

तयार्त्ति धेर्याङ्.कुशवारितर्ष्यया
द्विजातिकन्यां परिणायितः पतिः ।
न हि क्षितीशानविलङ्घ्य शासनान्
विलङ्.घयन्ति प्रियजीवित श्रियः ।।

अर्थात् वह कुन्दमलिका अपनी ईर्ष्या को बहुत साहस के साथ रोका और उसका पति ब्राह्मण कन्या से विवाह किया, वह प्राप्त जीवन और धन का सम्राट के आदेश का उल्लंघन नहीं किया।

रथोद्धता छन्दस् :

इस छन्दस् के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। छन्दशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ "वृत्तरत्नाकर" में इस इन्छस को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है -

रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।[1]

अर्थात् जिस छन्दस् के प्रत्येक चरण में रगण के बाद क्रमशः रगण, नगण, रगण, एक लघु तथा एक गुरू वर्ण आये उसे रथोद्धता छनदस् कहते हैं। इसमें पादान्त में यति अर्थात् विश्राम होती है

---

1. वृत्तरत्नाकर - 3/38

'**छन्दोमंजरी**' में कुछ इसी प्रकार इस छन्दस् को परिभाषित किया है -

रात्परैर्नरलगै रथोद्धता ।[1]

अर्थात् रथोद्धता छन्दस् में रगण, नगण, एक लघु तथा एक गुरू वर्ण होता है।

यथा -

सिंहशत्रुरथ तामिषुं मुदा,
गोमुखादिभिरपूजयत्सहः ।
सिद्धसार्थवधजात संमदो
दत्तकाडि.क्षतवरामिवाम्बिकाम् ।।

अर्थात् सिंहशत्रु गोमुख और दूसरों के साथ प्रसन्नता से पूजा करने लगे कि तीर एक जंगली डाकू का वध करने में सफल व्यापारी के वरदान की आकांक्षा से अम्बिका देवी। की पूजा की।

इसी प्रकार रथोद्धता छन्दस् से छन्दोबद्ध एक और सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

सर्वथा सुमगतामहोद्धतः
किंकरा भवतु गोमुखस्तवः ।
योषितो हि जितदृष्टभर्तका -
स्तोषयन्ति जननी सखी जनम् ।।[3]

---

1. छन्दोमंजरी
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - अष्टम सर्ग 55 श्लोक
3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचविंश सर्गः 109 श्लोक

अर्थात् क्या गोमुख उच्च अच्दे गुणों से परिपूर्ण आपका सेवक हो सकता है। स्त्री जो अपने पति को देखकर उसे प्रसन्न करती है और जिनसे माता-पिता भी सन्तुष्ट रहते हैं।

बसन्ततिलका छन्दस् :

इस छन्दस् के प्रत्येक चरण में चौदह अक्षर होते हैं। छन्दशास्त्र में प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस छन्दस् को इस प्रकार परिभाषित किया है -

उक्ता बसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।[1]

अर्थात् बसन्ततिलका छन्दस् उसे कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण तथा 2 गुरू वर्ण आये।

आचार्य काश्यप इसे सिंहोन्नता अथवा आचार्य सैतव उद्धर्षिणी कहते हैं।

'छन्दोमंजरी' में भी कुछ इसी प्रकार इस छन्दस् को परिभाषित किया है -

ज्ञेयं बसन्ततिलकं तभजा जगौ गः ।[2]

अर्थात् बसन्ततिलका छन्दस् में तगण, भगण, जगण, जगण तथा दो गुरू वर्ण आते हैं।

---

1. वृत्तरत्नाकर - 3/79
2. छन्दोमंजरी

यथा -

योगन्धरायणवचः सुभगं निशम्य,
प्रीत्या नरेन्द्रसमभुच्छ्रयितागृहस्तम् ।
नो साधु - साधु नरकुंजर साधु मन्त्रिन्,
इत्युज्झितासनमभाषत निर्व्यवस्थम् ।।[1]

अर्थात् यौगन्धरायण के इस प्रसन्नता पूर्वक आवाज को सुनकर राजा की सभा में प्रसन्नता से अपने हाथों को ऊपर उठाया और बिना किसी की आज्ञा के अपने आसन से उठकर चिल्लाया और कहा।

यहां प्रथम चरण के अन्तिम अक्षर लघु है परन्तु यहां पादपूर्ति हेतु गुरू वर्ण हो गया है। अतः यहां पादपूर्ति दोष है।

वैतालीयछन्दस् :

इस छन्दस् के विषम चरणों में चौदह और सम चरणों में सोलह मात्रायें होती है तथा विषम में छः और सम में आठ मात्राओं के बाद रगण लघु और गुरू मात्रायें होती है।

छन्दसशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस छन्दस् का लक्षण कुछ इस प्रकार किया है -

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - षष्ठ सर्गः 3 श्लोक

षड्विषमेऽष्टौ समे कलाः,

ताश्च समेस्युर्नो निरन्तराः ।

न समाऽत्र पराश्रिता कलाः,

वैतालीयेऽन्ते रत्नौ गुरूः ।[1]

अर्थात् जिसके विषम प्रथम और तृतीय चरणों में छः मात्रायें तथा सम द्वितीय और चतुर्थ चरणों में 8 मात्रायें हो और इन मात्राओं में अनन्तर दोनों सम-विषम में एक रगण एक लघु और एक गुरू क्रम से आये उसे वैतालीय छन्दस् कहते हैं।

सम चरणों में मात्रायें निरन्तर न हो अर्थात् सब लघु रूप में न हो, विषम में चाहे हो या न हो। इसमें सम मात्रा द्वितीय चतुर्थ छठी आने वाली तीसरी पांचवी मात्रा तथा छठी और सातवीं मात्रा एक गुरू रूप में न हो। वैतालीय छन्दस् कहलाता है।

यथा -

अथ राजनि काननावृते,

पुरमास्पन्दितलोकलोचनाम् ।

निभृतश्वसितामयध्वनि,

मृतकल्पां प्रविवेश पालकः ।[2]

अर्थात् इसके पश्चात वन में एकान्त में पहुंचकर पालका ने नगर में प्रवेश किया तो श्वांस रहित दुःख से लड़खड़ाती ध्वनि करने वाले व्यक्तियों ने भयभीत नेत्रों से उन्हें देखा।

---

1. वृत्तरत्नाकर
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - प्रथम सर्गः 9। श्लोक

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में -

> इति हृष्टमति निशाम्य तस्या,
>
> श्चरित् पुत्र समूहलाभ हेतुम् ।
>
> सचिवैः सहितश्चकार राजा
>
> सुतसंप्राप्तिफलं क्रिया विचारम् ।।[1]

अर्थात् इस कारण वह उसके जीवन में अनेक पुत्रों की उपलब्धि होने के कारण वह राजा, सलाहकार मित्र सभी धार्मिक क्षेत्रों पर चिन्तन किया इससे पुत्रों को आगे जाकर लाभ प्राप्ति हुई।

शार्दूल विक्रीडित छन्दस् :

इस छन्दस् के प्रत्येक चरण में मात्रायें होती हैं। छन्दसशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

> सूर्याश्चैर्यसजस्तताः समुखः शार्दूलविक्रीडितम् ।[2]

---

1. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह - चतुर्थ सर्गः ।32 श्लोक

2. वृत्तरत्नाकर

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से मगण, सगण, जगण सगण, दो तगण और एक गुरू वर्ण होता है उसे शार्दूलविक्रीडित छन्दस् कहते हैं। यति (विश्राम) बारहवें और सातवें वर्ण पर होती है।

'छन्दोमंजरी' में भी इस छन्दस् के लक्षण को कुछ इस प्रकार प्रतिपादित किया है -

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।[1]

यथा - या स्वाभाविकरूपखण्डित जगद्रूपाभिमानाप्रिया ।
श्रृङ्गारादिकसप्रयोग सुभगा जायते सा कीदृशी
इत्यध्यासितचेतसा कथमपि प्रक्रान्तया चिन्तया
पर्यंकङ्कविवर्तिनार्ततनुना नीता त्रियामा मया ।[2]

अर्थात् स्वाभाविक सौन्दर्य के समय मेरी प्रिया के पूरे विश्व के सौन्दर्य का अभिमान खण्डित हो गया। कैसे वह श्रृङ्गारादिसामाग्री के प्रयोग से सुन्दर दिखती हैं मेरा मस्तिष्क यह सोचने के साथ ही उसके अधीन हो गया।

इस प्रकार यहां क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरू वर्ण है अतएव यहां शार्दूलविक्रीडत छन्दस् है

मंजुभाषिणी छन्दस् :

इस छन्दस को छन्दश्शास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

---

1. छन्दोमंजरी
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह, दशम सर्गः 274 श्लोक

सजसा जगौ भवति मंजुभाषिणी।[1]

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः सगण, जगण, सगण और पुनः जगण तथा एक गुरू वर्ण हो तो उसे मंजुभाषिणी छन्दस् कहते हैं। इसके पांच और आठ वर्णो पर यति होती है। किसी विद्वान का मत है कि यति पादान्त में होती है परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि पांचवे वर्ण पर यति स्पष्ट प्रतीत होती है। इस छन्द रचना में अत्यन्त माधुर्य रहता है अतः इसे मंजुभाषिणी छन्दस् कहा है।

यथा -

अथ गच्छति स्म रविरस्तमूधरं
वसतिद्रुमानाभि शकुन्तपङ्.क्तयः ।
मद मन्दमात्मभवनानि नागराः
प्रियया सहाहमपि तन्निवेशनम् ।[2]

अर्थात् इसके पश्चात सूर्य अस्ताचल में अपनी पशिचमी पर्वत की ओर जा रहा है। पक्षियों की पंक्तिवद्ध होकर अपने निवास वृक्षों की ओर जा रहे है और नागरिक भी अपने भवनों की ओर जा रहे हैं मैं भी अपनी प्रिया के साथ अपने भवन में प्रवेश कर गया।

इस प्रकार यहां सगण जगण, सगण और पुनः जगण तथा एक गुरू वर्ण है अतएव यहां मंजुभाषिणी छन्दस् है।

---

1. वृत्तरत्नाकर, पेज नं0 131

2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - अष्टादश सर्गः 92 श्लोक

पृथिवी छन्दस् :

इस छन्छस् के प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षर होते हैं। छन्दश्शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस छन्दस् को कुछ इस प्रकार कहा गया है।

जसौ जसवला वसुग्रहयनिश्रच पृथ्वी गुरूः।[1]

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, सगण पुनः जगण सगण, यगण एक लघु और अन्त में एक गुरू हो उसे 'पृथ्वी छन्दस्' कहते हैं। यति (विश्राम) सर्वदा आठ और नौ वर्णों पर होती है। यथा इस महाकाव्य का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

तरंग जलदालयं मकर चक्रचक्रग्रहं
पिनाकधरकधरप्रभमनन्तमप्रक्षयम्
महावर्णवनमस्तलं लवणसिन्धुनौछछाना
वियत्यपरयेन तेन वणिजस्ततः प्रस्थिताः[2]

अर्थात् ये समुद्र की लहरों में बादलों के समूह मकर और नक्षत्र में घूमते हुए ग्रह की तरह है और अर्न्तहीन और हवा से हीन जल शिव के गले में नीले चिन्ह की तरह दिखायी दे रहा है।

---

1. वृत्तरत्नाकर - तृतीय अध्याय - पेज नं0 142
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - अष्टादश सर्गः - 252 श्लोक

अनुष्टुप छन्दस् :

इस छन्दस् के प्रत्येक भाग में आठ अक्षर होते हैं। अनुष्टुप छन्दस् को पद्य या श्लोक भी कहते हैं। अनुष्टुप छन्दस् • को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरू विजानीयदेतत्पद्यस्य लक्षणम् ।।[1]

'श्रुतबोध' में यही लक्षण कुछ इस प्रकार से कहा गया है -

श्लोके षष्ठं गुरू श्रेयं सर्वत्र लघु मंचमम् ।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्यथोः ।।[2]

'छन्दोमंजरी' में कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है -

मंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
गुरू षष्ठं च जानीयात् शेषष्ठनियमो मतः ।।[3]

अर्थात् जिस छन्द में मंचम अक्षर प्रत्येक चरण में लघु हो (परन्तु) सप्तम अक्षर केवल दूसरे तथा चौथे चरण में लघु हो, षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में

---

1. वृत्तरत्नाकर /10
2. श्रुतबोध 10
3. छन्दोमंजरी 4/7

गुरू हो उसे अनुष्टुप या पद्य कहते हैं। अनुष्टुप छन्दस् प्रधान यह सम्पूर्ण महाकाव्य है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द का प्रयोग बदल दिया गया है।

महाखाता महाशाला,
पुर्यस्त्युज्जयनीति या ।
महाम्भोधिमहाशैलमेरबलेव
महामही ।।[1]

अर्थात् पृथिवी पर उज्जयिनी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी थी जिसके चारों ओर गहरी खाई थी, विशाल समुद्र और विशाल पर्वतों की मेखला (चोटियां) थी।

एक अन्य उदाहरण में -

अथ संप्रेषितास्थानः
सचिवानबवीन्नृपः ।
यदब्रवीमि निबोधन्तु
भवतन्तस्तत्सचेतस् ।।[2]

अर्थात् इस प्रकार दूसरा राजा ने सभा बुलाकर मन्त्रियों से कहा - जो मैं कह रहा हूँ उसे आप सब ध्यान से सुनिए। इसके अतिरिक्त बहुत से उदाहरण उस सम्पूर्ण महाकाव्य में द्रष्टव्य है।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - प्रथम सर्गः - 12 श्लोक
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्गः

शालिनी छन्दस् :

शालिनी छन्दस् के प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं। इस छन्दस् को छन्दश्शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' में इस प्रकार परिभाषित किया है -

शालिन्युवता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ।[1]

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में मगण, दो तगण तथा दो गुरू वर्ण हो, उसे शालिनी छन्दस् कहते हैं। इसके चौथे और सातवे अक्षर पर यति होती है।

यथा -

चिन्तामेतां कुर्वतः कार्यबन्ध्याम् ,
आसीत्सा मे सोपकारैव रात्रिः ।
सद्यः कान्ता कण्ठा विश्लेष दुःखम्,
आरात्सह्यं चेतसा यन्नसोढम ।।[2]

अर्थात् इस प्रकार कार्य वन्ध्या की चिन्ता करते हुए रात्रि को व्यतीत किया उपकार पूर्वक मेरी आवश्यकता को सिद्ध किया मैं कष्टो को सहने में समर्थ हूँ, जो दूसरे जन्म नहीं ले सकते। इस प्रकार इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप छन्दस् का प्रयोग किया परन्तु सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन कर दिया है जो महाकाव्य का लक्षण है। बुधस्वामी ने इस परिपालन करते सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन कर दिया है

1. वृत्तरत्नाकर - 3/34
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - 20 सर्ग - 260 श्लोक

बृहत्कथा श्लोक संग्रह में अलङ्कार सौन्दर्य

" अलङ्करोति इति अलङ्कार " शब्द की व्युत्पत्ति है। इसका तात्पर्य यह कि शरीर को विभूषित करने वाले तत्व का नाम अलङ्कार है। ध्वनिवादी आचार्यों ने अलङ्कार को काव्य का अस्थिर तत्त्व माना है। उनके अनुसार यदि अलङ्कार है तो वे काव्य के उत्कर्षाधायक होगें और यदि नहीं है तो भी काव्य की कोई हानि नहीं है।[1] किन्तु अलङ्कार वादी आचार्य अलङ्कार को काव्य का अपरिहार्य तत्त्व मानते हैं। अलङ्कार वादी आचार्यों के अनुसार अलङ्कार रहित काव्य की कल्पना उष्णतारहित अग्नि की कल्पना मात्र के समान ही उपहास योग्य है।[2] ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय तत्त्व अलङ्कार के लिये कवियों का प्रयासरत् रहना स्वाभाविक है। नाट्यकार भी नाट्यों में अलङ्कारों की छटा बिखरने का मोह नहीं छोड़ पाते ।[3] अलङ्कार-सौन्दर्य की दृष्टि से यह महाकाव्य उपमा प्रधान महाकाव्य है। यह महाकाव्य उपमा के उदाहरणों की अनुपम छटा से सरोबार है। परन्तु कहीं-कहीं परदूसरे कुछ अन्य अलङ्कारों की अनुपम छटा की कुछ झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अतएव अलङ्कार सौन्दर्य की दृष्टिसे विवेच्य कृति विचारणीय है। अलङ्कार सौन्दर्य की दृष्टि से बहुत से उदाहरण द्रष्टव्य है।

अनुप्रास अलङ्कार-

अनुप्रास अलङ्कार यह एक ऐसा अलङ्कार है। जिस पर कदाचित् नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि से लेकर आज तक शायदही ऐसा कोई अलङ्कार पर लिखने वाला अलङ्कारिक

---

1 .... सर्वत्रा सालङ्कारौ क्वचित्रु स्फुटालङ्कार विरहेऽपि न काव्यत्व हानिः। –काव्यप्रकाशः, आचार्य मम्मट 1/4

2 अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थवनलङ्कृति।
असौ न मन्यते तस्मात् अनुष्णमनलं कृति।। ।। चन्द्रालोक, जयदेव।।

हो जिसने कुछ न लिखा हो। उद्‌भट्ट ने इसका सामान्य स्वरूप बताया है। उनके मतानुसार अनुप्रास का लक्षण इस प्रकार हैं-

" सरूपव्यंजनन्यासं तिसृष्वेतासु वृन्तिषु।

प्रथक प्रथका॒नुप्रासमुशन्ति कव्यः सदा।।[1]

प्रसिद्ध अलङ्कारशास्त्री ने 'सरूप' वर्ण विन्यास को 'अनुप्रास' कहा है और उसके दो भेद बताये हैं' 1. ग्राम्यानुप्रास, 2. लाटीयानुप्रास। दण्डी ने पादगत या पदगत वर्णावृत्ति को अनुप्रास कहा है ओर स्पष्ट किया है कि यह आवृत्ति बहुत व्यवहृत न हो।[2]

आचार्य वामन ने 'शेषसरूपोऽनुप्रास' कहा है अर्थात् एकार्थक अथवा अनेकार्थक पद तथा अक्षर होता है। अर्थात् वे मानते है कि आवृत्ति हो, तो वहाँ अनुप्रास अलङ्कार होता है। अर्थात् वे मानते है कि आवृत्ति पूर्व प्रयुक्त वर्णों से साम्य रखती हो।[3]

कुन्तक ने 'वर्णविन्यास- वक्रता के नाम से ही अनुप्रास सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने 'वर्णविन्यास –वक्रता का स्वरूप बताते हुए कहा है कि– जिस रचना में एक अथवा दो अथवा बहुत से वर्ण थोड़े-थोड़े अन्तर से बार-बार (उसी रूप में) विन्यस्त होते हैं, वह वक्रता वर्णविन्यास' वक्रता कहीं जाती है। मम्मट ने वर्ण साम्य को अनुप्रास कहा है।[4]

वृहत्कथाश्लोक संग्रह -समूह में अनुप्रास अलङ्कार का बहुविधि प्रयोग आद्योपान्त प्राप्त होता है। इसका निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

महाखाता महाशाला,

पुर्यस्त्युज्जयनीति या।।

महाम्भोधिमहाशैलमैखलेव

---

1 उद्‌भट्ट– काव्यालङ्कार– श्लो0 सं: – [illegible] 10

2 कुन्तक– वकोक्ति जीवतम् पेज नं० 85

3 वामन – काव्यालङ्कार प्रथम अध्याय

4 मम्मट कृतकाव्य प्रकाश– द्वितीय उल्लास

महामही।।[1]

अर्थात् पृथिवी पर उज्जयिनी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी थी, जिसके चारों ओर गहरी खाई, विशाल समुद्र और विशाल पर्वतों की मेखला (चोटियां) थी।

यहाँ पर म एवं छ वर्ण की आवृत्ति हुयी है। अतएव यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है। निम्न पथ में भी अनप्रास की मनोहर छठा देखी जा सकती है—

अतिवाह्य च दुःखेन

दिनशेषे समासमम्।

जनापवादोपलम्भाय प्रदोषे,

निर्ययौ गृहात्।।[2]

अर्थात् कन्या के वचन को सुनकर राजा का हृदय अत्यन्त दुःखी हुआ, किसी तरह से अपने बचे हुए दिन को व्यतीत किया। जनापवाद के कारण वह रात्रि में ही महल से बाहर निकलते थे। यहाँ पर 'द' 'स' 'म' 'य' आदि पदों की आवृत्ति हुयी है। अतएव अनुप्रास अलङ्कार है। अनुप्रास अलङ्कार की निम्न उदाहरण प्रशसंनीय है—

काल कम्बलसंवीतः

ससि चर्मासिपुत्रिकः।।

समन्त्रगदसंनाहः संचचार

शनैः शनैः।।[3]

अर्थात् काला कम्बल ओठकर, अभेद्य कवच पहनकर, आवाज बदलने की कला के साथ मुहर लगाकर तलवार और कटार साथ लेकर राजा रात्रि में धीरे-धीरे छिप-छिपकर

---

1 वृ० क० श्लो० सं०– प्रथम सर्ग प्रथम श्लोक

2 वृ०क० श्लो० सं०– 1/ 17 वृहत्कथा श्लोक संग्रह

3 वृ० क० श्लो० सं० 1/ 18

इधर-उधर विचरण करने लगे। यहाँ पर 'क' 'ल' 'च' 'श' आदि वर्णों की आवृत्ति हुयी है अतः यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है। अनुप्रास अलङ्कार एक अन्य उदाहरण में-

सानुदासश्च रूपेण

स्मरेण सदृशः किलः।

सकलं च कला जालं,

जालं वेदेति जगति श्रुतिः।।[1]

अर्थात् यह पूरे संसार में प्रसिद्ध था। कि सानुदास देखने में कामदेव की तरह सुन्दर था, सम्पूर्ण कलाओं के जाल को जानने वाला था- यहाँ 'ल' वर्ण 'ज:' आदि वर्ण की आवृत्ति हुई है अतएव अनुप्रास अलङ्कार है।

श्लेष अलङ्कार :

भामह, दण्डी, उदभट्ट- तीनों ने ही 'शिलष्ट संज्ञा' का प्रयोग किया है। सम्भवतः वामन ने ही सबसे पहले 'श्लेष' शब्द का प्रयोग किया है।

भामह ने श्लेष अलङ्कार का स्वरूप कुछ इस प्रकार बताया है" शिलष्ट नामक अलङ्कार वहाँ होता है जहाँ उपमान से उपमेयकी गुण क्रिया तथा नाम की दृष्टि से एकता स्थापित की जाती है।[2]

एक ही अर्थ और शब्दगत दोहरे अभिप्रायों के कारण इस अलङ्कार के अनेक प्रभेद हो जाते हैं। शिलष्ट अलङ्कार सहोक्तिमूलक, औपम्यमूलक और हेतु मूलक तीन प्रकार का माना जाता है। दण्डी ने शिलष्ट का स्वरूप उस प्रकार प्रस्तुत किया है– "शिलष्ट वह वचन है जो 'अनेकार्थक' और एक रूपान्वित हो अनेक अर्थों के बोधक शब्दों की एक आनुपूर्वी जहाँ एक ही प्रकार की होती है वहाँ 'श्लेष अलङ्कार होता है।[3]

---

1 वृ०का० श्लो० सं०– अष्टादश सर्गः / 280

2 भामह [illegible] काव्यालंङ्कार– 85

3 दण्डी– काव्यादर्श – पृ०सं० 150

रूद्रट ने श्लेष अलङ्कार की परिभाषा कुछ इस प्रकार की है–

जहाँ ऐसे अनेक वाक्य एक ही प्रयत्न से एक ही साथ कह दिये जायें जिनसे सुप्रयोजित कष्ट कल्पना रहित नाना विधपदों का एकीभाव या सन्धि 'विद्यमान हो।[1] अर्थात् जहाँ अनेक वाक्य अर्थतः भिन्नार्थक होने पर भी आनुपूर्वी या वर्ण विन्यास क्रम की दृष्टि से एक ही हो, फलतः उन्हें अलग-अलग प्रयोग करने की आवश्यकता ही न पड़े और एक ही उच्चारण से (आनुपूर्वी अभेदवश) अनुच्चरित भी, साथ ही उच्चरित समझ लिये जायें। वहाँ श्लेष नामक अलङ्कार होता है। आचार्य मम्मट श्लेष अलङ्कार को इस प्रकार परिभाषित किया है–

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपदभाषण सदृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दा श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।[2]

अर्थात् ...अर्थभेद के कारण भिन्न भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण का विषय होते हुए भी श्लिष्ट एकरूप प्रतीत होते है। वह श्लेष अलङ्कार कहलाता है यह श्लेष व अक्षर के भेद से आठ प्रकार का होता है। निम्न श्लोको में श्लेष अलङ्कार की अनुपम छटा देखने को मिलती है–

आसीदासां प्रणामोऽयमर्य
पुत्रेण नागराः।
कृतस्तोषयता कान्ताम स्माकं
स्वामिनीति।। [3]

अर्थात् गाडी में वे बालाओं ने आपसे प्रार्थना कि आप अपने गिरते हुए मुकुट को ठीक कर ले, जिससे आप अभिवादन का प्रत्युत्तर भी हो जायेगा।

---

1 काव्याङ्कंकार–रूद्रट कृत 4/1

2 मम्मट कृत काव्यप्रकाश नवम उल्लास

3 वृ0 क0 श्लो0 सं0 – दशम सर्गः– 262 श्लोक

18

दूसरे अर्थ में राजन् बालाओं को मुकुट ठीक करने के बहाने से अभिवादन यहाँ पर दो अर्थ निकल रहे है। अतएव श्लेष अलङ्कार है।

उपमा **अलङ्कार** –

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में उपमा का स्वरूप इस प्रकार बताया है– गुण और आकृति के आधार पर सादृश्यवश जहाँ किसी वस्तु को उपमित किया जाय, वह उपमा नामक अलङ्कार होता है। यह उपमा एक की तथा अनेक की एक हो सकती है।

भामह का कहना है कि देशकाल एवं क्रिया आदि दृष्टियों से भिन्न उपमान से जहाँ उपमेयका साम्य प्रदर्शित किया जाय वहाँ उपमा अलङ्कार होता है।[1] इन्होंने उपमा के व्यासगत, समासगत, तथा तद्वितगत भेदों की चर्चा की है। यथा एवं इवको उपमावाचक भी कहा है।[2]

दण्डी ने –सादृश्य' को उपमा कहा है और इसके लगभग एकदर्जन भेद बोधक शब्दों की गणना करायी है। [3] उद्भट्ट से एक नई धारा 'उपमा' के स्वरूप के सम्बन्धमें आरम्भ होती है। उदभट्ट ने उपमा को साधर्म्य रूप माना है।[4] कुछ अलङ्कारिकों ने से कुछ 'सादृश्य' को और कुछ 'साधर्म्य को 'उपमा' कहते है। भामह की छाया भी उपमा में दृष्टिगोचर होती है। भामह ने जिस प्रकार "देशकाल क्रियादिभिः विरूद्वेनोपमानेन"[5] कहा है। उद्भट्ट भी उसी प्रकार कहते है- "मिथोविभिन्न कालादिशब्दयोरूपम् तु तत्।[6] जिस प्रकार भामह ने यथेव शब्दों सादृश्यमाहृत कहा था, उसी प्रकार उद्भट्ट ने 'यथेव शब्द योगेन सा श्रुत्यान्वयमर्हति" कहा है।[7]

---

1 काव्यालङ्ककार सार संग्रह पेज नं0 150

2 भामह– काव्यालङ्ककार – पेज

3 दण्डीकृत– काव्यादर्श पेज नं 80

4 उदभट्ट काव्यालङ्ककार पेज नं. 173

5 भामह काव्यालङ्ककार - पेज नं 90

6 उद्भट्ट काव्यालङ्ककार पेज नं 173

7 भामह काव्यालङ्ककार पेज नं 173

वामन उद्‌भट्ट के समसामयिक है। इन्होंने 'साम्य' को ही उपमा की संज्ञा दी है।[1] मम्मट ने उपमा को साधर्म्य कहा है रूय्यक ने भी 'साधर्म्य' होने पर ही उपमा की सत्ता स्वीकार की है। हेमचन्द्र ने भी "हृद्यसाधर्म्य" को ही उपमा का स्वरूप कहा है।

अलङ्कार प्रधान तो यह सम्पूर्ण विवेच्यकृति है। कुछ पद्यों में उपमा अलङ्कार की मनोहर छटा देखने को मिलती है–

बृहस्पतिसमयाच्चास्य

मंत्री भरतरोहतकः।

रोह·तकः सुरोहश्चः

तस्यास्तां तत्समौ सुतौ।।[2]

अर्थात् राजा महासेना का मंत्री भरत रोहतक 'बृहस्पति' के समान थे उनके मंत्री के रोहतक और सुरोहा नाम के दो पुत्र थे जिनके सभी गुण पिता के ही समान थे।

यहाँ भरतरोहतक की बृहस्पति से उपमा की गई है। यहाँ उपमेयहै' भरतरोहतक उपमान है 'समः' यहाँ उपमा वाचक शब्द है। और साधारण धर्म ज्ञानवान होना है। जो लुप्त है। अतः लुप्तोपमा अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण है–

प्रभाते तानहं प्राप्तान्,

सव्रीडानिव पृष्टवान।

यातायस्य यथा रात्रिः

स तया वर्णयत्विति।।[3]

---

1 मम्मट– काव्यप्रकाश उल्लास– 467 पेज नं0

2 बृ0 क0श्लो0 सं0 प्रथम सर्ग/ 7

3 बृ0 क0 श्लो0 सं0 पञ्चदश सर्ग / 5 श्लोक

अर्थात् प्रातःकाल जब वे पहुँचे तो सभी, उत्सुक थे, मैने उनसे (नरवाहनदत्त से) पूँछा कि रात्रि कैसी व्यतीत हुई कृपया बताइये।

यहाँ पर 'इव' उपमा वाचक शब्द है तथा राजा की तुलना लज्जावान पुरुषसे की गई है। अतः उपमा अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण में–

गम्भीरं ध्वनति ततः समुद्रतूर्ये

गायत्सु श्रुति मधुरं शिलिमुखेषु।।

नृत्यत्सु स्फुटरटितेषु नीलकण्ठे।

ष्वालम्बेकरमिभतालुताम्रमस्याः।।[1]

अर्थात् मैंनें हाथी के तालु के समान लाल हाथों को पकड़ा उस समय ड्रम के स्वर तरंगो की तरह प्रतीत हो रही थी, भ्रमर मधुरता से गुञ्जन कर रहे थे और मोर उत्कण्ठित होकर नृत्य कर और गाना गा रहे थें।

यहाँ सुरसमञ्जरी के हाथों के रंगो की तुलना हाथी के तालु के समान लालवर्ण से की गयी है। अतः यहाँ उपमा अलङ्कार है।

रूपक **अलङ्कार :**

अर्थालङ्कारों में सादृश्यमूलक 'रूपक' का ही विवेचन सर्वप्रथम आरम्भ किया है। रूपक अलङ्कार के विषय में कहा गया है। कि जहाँ एक पद का दूसरे पद से अभीष्ट सम्बन्ध अभिधा- लभ्य अर्थ द्वारा न बन सके वहाँ प्रधानानुरोधवश अप्रधानपद की लक्षणा के द्वारा जब प्रधान पद के सम्बन्ध किया जाय तो रूपक अलङ्कार कहा जाता है।[2]

रूपक अलङ्कार एक ऐसा अलङ्कार है जिसकी चर्चा भरत मुनि ने की है। भरत मुनि ने इसका लक्ष्य इस प्रकार किया है–

---

1 बृ0 क0 श्लो0 सं0 अष्टादश सर्गः / 306

2 काव्यालङ्ककार सार संग्रह – डा0 राममूर्ति त्रिपाठी

नानाद्रव्यानुषंगाद्यैर्यदौपम्यं गुणाश्रम।

रूपनिर्वणनायुक्तं तद्रूपकमिति स्मृतम्।।

स्वविकल्पै र्विरचितं तुल्यावयलक्षणम्।

विञ्चित्सदृश्य सम्पन्नं यद्रूपं रूपकं तुतत्।।[1]

रूपक की परिभाषा भरत के यहाँ कुछ विचित्र रही है। इन्होंने बताया कि थोड़े सादृश्य से समन्वित रूप को रूपक कहते हैं। इस रूप में समान अवयवों की स्थिति होती हैं। उसकी रचना स्वगत विकल्प से होती है। इसी के साथ एक परिभाषा और भी है, जिसका भाव कुछ इस प्रकार है— नाना द्रव्यों के सम्बन्ध से समान धर्ममूलक जो औपम्य है। वही रूप वर्णना से युक्त होकर रूपक कहा जाता है।

उपमानेन यत्नन्वमुपमैंयस्य रूप्यते।

गुणानां समतां दृष्टवा रूपकं नाम तद्विदुः।। [2]

अर्थात् उपमान से उपमेयका जहाँ तादात्म्य गुण साम्य देखकर निरूपित किया गया हो वहाँ रूपक अलङ्कार होता है।

" उपमैंव तिरोभूत भेदा रूपकमुच्यते।। [3]

मम्मट के अनुसार रूपक का लक्षण है-" तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमयेयोः"।[4] अर्थात् उपमान और उपमेयका जिनका भेद प्रसिद्ध है। उनका सादृश्यतिशयवश जो अभेद वर्णन है। वह रूपक अलङ्कार है।

रूपक :

निम्न उदाहरणों में रूपक अलङ्कार की अनुपम छटा देखने को मिलती है—

राज्यग्निमादधद्वपि

त्वयि वर्षशतायुषि।

---

1 भरतमुनि नाट्यशास्त्र— सप्तदश अध्याय

2 भामह— काव्यालङ्कार

3 दण्डी कृति नं0 — काव्यादर्श

4 काव्यप्रकाश— कारिका सं0— 92

परिवेन्तारमात्मानमयं

मन्यते निन्दितम्।।[1]

अर्थात् राज्य रूपी अग्नि को धारण करने वाले आप शतायु हो, यदि तुमने स्वयं सत्ता अपने हाथ में ले ली तो निन्दित पात्र माने जायेगें। यहाँ राज्य उपमेयएवं अग्नि उपमान है। जिनका भेद प्रसिद्ध है। किन्तु उनका अभेद वर्णन हुआ है। अतः यह रूपक अलङ्कार का स्थल है।

सा हि मामाहयत्येव

परित्रयस्व मामिति।

तरंगपाणिना कृष्य हता

पापेन सिन्धुना।।[2]

अर्थात् उसकी यह इच्छा पूरी करना असम्भव है। इसलिये वह मुझे बाहर बुला रही है। इससे मेरी रक्षा करिये। परन्तु यह पापी नदी अपनी तरङ्ग रूपी बाहों से खींचना चाहती है। यहाँ तरङ्गपणिना इन पद में रूपक अलङ्कार है। क्योंकि यहाँ नदी की तरङ्ग उपमेय है एवं पाणि यह उपमान है, जिनका भेद जगत् में प्रसिद्ध है। फिर भी वहाँ इन दोनों का अभेद रूप में वर्णन किया गया है।

उत्प्रेक्षा **अलङ्कार :**

भामह के अनुसार यह उपमान एवं उपमेय के बीच विद्यमान रहती हुई भी समानता विविक्षत नहीं रहता, परन्तु साथ ही औपम्य की गन्ध अवश्य रहती है। यहाँ अपकृत या उपमान गत गुण या क्रिया के सम्बन्ध से उपमेय की उपमान रूप में उत्प्रेक्षा की जाती है, और ऐसा करने के लिये यह सहज ही सम्भव है। कि कुछ अतिशय का सहारा लेना पड़े।[3]

---

1 बृ0 क0 श्लो0 संग्रह– प्रथम सर्ग 74 श्लोक

2 बृ0 क0 श्लो0 सं0 – अष्टादश सर्गः 626 श्लोक

3 भामह काव्यालङ्ककार

दण्डी के शब्द तो अवश्य भिन्न है। परन्तु अर्थतः कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। उन्होंने कहा है– कि जहाँ वर्ण्य चेतना या अचेतन की वास्तविक गुण एवं क्रियायें अन्यथा सम्भावित हों उत्प्रेक्षा नामक अलङ्कार होता है।[1] दूसरी बात दण्डी ने उत्प्रेक्षा के सम्बन्ध में कहनी चाही है। वह यह है कि "लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जने नभः ।।" मैं जो इन शब्द का प्रोग सुनकर यह भ्रम उत्पन्न करते है कि यहाँ उपमा नामक अलङ्कार है वे गलत है। वस्तुतः यहाँ उत्प्रेक्षा ही है।

वामनाचार्य ने कहा है– अतद्रूपस्यान्यथयाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा"[2] अर्थात् जो वस्तु जैसी नहीं है उसमें लोकोत्तरता का समावेश करने के लिये उसका कुछ अन्य रूप में ही अध्यवसान ही उत्प्रेक्षा है अध्यारोप या लक्षणा नहीं है।

रूद्रट ने कहा है कि- अत्यधिक समानतावश जहाँ उपमान और उपमेयकी एकता बताई जाये तथा उपमेय में अप्रकृत या उपमान के गुणों का समारोप किया जाये वहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।[3]

आचार्य मम्मट ने उत्प्रेक्षा का स्वरूप कुछ इस प्रकार बताया है– उपमेय की उपमान के रूप में सम्भावना ही उत्प्रेक्षा है–

'सम्भावनामथोत्प्रेक्षा'[4]

विवेच्य कृतियों में उत्प्रेक्षा अलङ्कार के अनेक चमत्कारी प्रसङ्ग प्राप्त होते है। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है। एक अन्य उदाहरण में–

सा तु संध्यामुपासीनं

गङ्गारोधसि नारदम्।

---

1 दण्डी कृत काव्यादर्श

2 वामन काव्यालङ्कार चतुर्थ अधिरण पृ0 480

3 रूद्रट – काव्यालङ्कार

4 काव्य– प्रकाश कारिका संख्या – 92

स्थाणुरिथरं भुजङ्गीव

विलोला पर्यवेष्टयत्।।[1]

अर्थात् सायंकाल में जब नारद मुनि गङ्गा नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे, उसी समय इफ्फक की माला ऊपर से सर्प की तरह आकर गिर पड़ी और लपेट उठी इस पर नारद मुनि अत्यन्त क्रोधित हुये।

यहाँ पर पुष्प की माला में भुजङ्ग की सम्भावना की गयी है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। एक अन्य उदारहण में–

ततस्तादृशं दुःखं,

पोतभङ्गादिहेतुकम्।

सर्वमेंकपदे नष्टं

साधावपकृतं यथा।।

अर्थात् इसके पश्चात् जहाज के डूबने और तुरन्त ही नष्ट हो जाने को देखकर अत्यन्त दुःख के समान थे, मानो यह सब साधुओं के प्रति किये गये अपकार्यों के फल के समान दुःखद् हो।

यहाँ पर जहाज डूबने का कारण मानों साधुओं के प्रति किये गये उपकार्यो का फल था। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण में –

मम मातुर्विवाहे तव

लब्धा ज्ञाति कुलात्किल।

तेन त्वामनुशोचामि,

द्वितीया जननीमिव।।

---

1 बृ० क० श्लो० सं०– तृतीय सर्गः / 50

अर्थात् मैं उसके सम्बन्धियों से आपने मेरी माता के कुल विवाह से स्वीकार कर लिया था, इसलिये मैं आपको अपनी मां के ही समान सोचता हूँ।

यहाँ पर माता के न होने पर भी मानों समान हो ऐसी सम्भाबना कर रहे है। और 'इव' उत्प्रेक्षा वाचक शब्द है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

विभावना **अलङ्कार :**

उदभट्ट ने दण्डी और भामह नाम के पूववर्ती आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट 'विभावना' नामक अलङ्कार का लक्षण स्वीकार कर लिया और उसे ज्यों का त्यों रख दिया,, उन्होंने भामह के साथ अपनी सहमति व्यक्त करते हुए यह कहा है कि–

"कारण के न रहने पर भी यदि कल की सत्ता देखी जाय तो विभावना नामक अलङ्कार होता है। परन्तु यदि आप ततः प्रतीत विरोध का समाधान शीघ्र सुलभ हो।[1]

दण्डी ने दूसरे शब्दों में अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। कि जहाँ वर्ण्यमान कार्य के प्रति प्रसिद्ध हेतु का अभाव बताया जाये। वहाँ विभावना नामक अलङ्कार होता है।[2]

वामनाचार्य ने 'क्रियया प्रतिषेधे प्रसिद्धतत्फलव्यक्तिर्विभावना "[3] कहकर परिभाषित किया है। आचार्य भामह ने भी यही कहकर परिभाषित किया है।[4] हेमचन्द्र ने विभावना को विरोध अलङ्कार में ही अन्तर्भूत कर रखाा है।

साहित्यदर्पणाकार ने भी माना है कि बिना हेतु के ही यदि कार्योत्पत्ति कही गयी है तो वहाँ विभावना नामक अलङ्कार होता है।

निम्न श्लोकों में विभावना नामक अलङ्कार स्पष्ट परिलक्षित होता है- यथा–

अथ वा भवतु स्वप्नः,

---

1 उदभट्ट – काव्यालङ्ककार

2 दण्डी कृत– काव्यादर्श

3 वामन– काव्यालङ्ककार

4 आचार्य विश्वनाथ कृत– साहित्यदर्पण

स्वप्नेऽपि न विरूध्यते।

दुर्लभेनापि हि स्वप्ने,

बल्लभेन समागमः।।[1]

अर्थात् स्वप्न होते हुए भी स्वप्न नहीं है क्योंकि स्वप्न में सज्जनों का समागम दुर्लभ है–

अथोक्तं तेन मत्तोऽस्ति,

भवानेवातिपण्डितः।

वन्द्यलक्षणयुक्तां यो,

वन्दयामि न वदन्ते।।[2]

अर्थात्- गोमुख ने उत्तर दिया- आपने हमारी अपेक्षा बहुत कुछ सीखा फिर भी सभी वन्दनीय लक्षणों से युक्त अभिवादन के योग्य होने पर भी अभिवादन योग्य नहीं है।

यहाँ पर वन्दनीय लक्षणों से युक्त अर्थात् अभिवादन के योग्य होने पर अभिवादन के योग्य नहीं है। अतएव विभावना अलङ्कार परिलक्षित होता है। एक अन्य उदाहरण में-

तस्मादजातपुत्रेण,

मातर्मृतसुतेव वा।

दुःख कर्मविनोदेन,

गमयेर्दिवसानिति।।

अर्थात् इसलिये हे माता ! आप स्वयं को पुत्रहीन अथवा जिसका पुत्र मृत हो चुका है। समझिये में आपके कष्टकारी दिन समाप्त कर शीघ्र ही सुख कर्मों से युक्त दिन लाऊंगा। यहाँ पर पुत्र के होते हुए भी स्वयं को पुत्रहीन समझना है। अतएव विभावना अलङ्कार है।

---

1 बृ0 क0 श्लो0 संग0 पञ्चम सर्ग, 163 श्लोकः

2 बृ0 क0 श्लो0 संग्र0 पञ्चदश सर्गः 4 श्लोक

विशेषोक्ति **अलङ्कार :**

भामह ने "विशेषोक्ति अलङ्कार" को कुछ इस प्रकार बताया है- जहाँ किसी वस्तु का एक भाग विनष्ट हो गया हो परन्तु उसकी विशेषता का प्रदर्शन करने के लिये अन्य गुण की सम्यक् स्थिति हो यहाँ विशेषोक्ति नामक अलङ्कार होता है। [1]

दण्डी ने कहा है कि - जहाँ वस्तु की विशेषता प्रदर्शित के लिये जाति गुण क्रिया आदि का अभाव वर्णित किया जाये वहाँ यह अलङ्कार होता है। अथवा यह कहा जा सकता है। कि जहाँ किसी वस्तु की विशेषता प्रदर्शित करने के लिये गुण, जाति एवं क्रिया आदि अभाव वर्णित किया जाये वहाँ विशेषोक्ति नामक अलङ्कार होता है। [2]

भामह और दण्डी जिस अभिप्राय को बहुत स्पष्ट नहीं कर सके थे। उदभट्ट ने व्यवस्थित और स्पष्ट किया। उन्होंने विशेषोक्ति का स्वरूप बताते हुए कहा– कारणों की समग्रता के बावजूद यदि कार्य की अनुत्पत्ति कही गयी है।

और यह इसलिये कि इस विचित्र प्रतिपादन भङ्गी से कुछ विशेष प्रतिपाद्य हो तो वहाँ विशेषोक्ति नामक अलङ्कार होता है।[3]

वामनाचार्य ने 'विशेषोक्ति' का कुछ और ही रूप स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि एक गुण की न्यूनता की कल्पना करने पर शेष गुणों से जो साम्य है उसकी दृढ़ता ने विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।

आचार्य मम्मट ने ' विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषुफलावचः।"

अर्थात् सम्पूर्ण कार्य के होने पर फल का न होना ही विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। [4] निम्न श्लोको में विशेषोक्ति नामक अलङ्कार परिलक्षित होता है।

---

1 भामह– काव्यालङ्कार

2 दण्डीकृत– काव्यादर्श

3 उदभट्ट– काव्यालङ्कार

4 काव्यप्रकाश– मम्मटकृत दशम् उल्लासः।

पूर्ववत्सानुदासोऽपि मुक्ताः,

पोत विपत्तितः।

आगमिष्यति तछेवि मुञ्च

कातस्तामिति।।[1]

अर्थात् सानुदास पहले की तरह सम्पूर्ण जहाज के नष्ट होने पर भी बच गया था और तुम्हारे पास वापस आ गया था। इसलिये इस तरह दुःखी मत होओ।

जीवन्त्येव मृता तात,

माता मित्रवती तव।

स्पृहयत्यनपत्याभ्यो या,

स्त्रीभ्यः पुत्रवत्यापि।।[2]

अर्थात् श्रीमान जी! आपकी माता जी जीवित है फिर भी मर चुकी है उनकी शत्रु हैं जो पुत्र होते हुए भी पुत्रहीन है।

यहाँ पर माता जी जीवित होते हुए भी मर चुकी है अतएव विशेषोक्ति अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण में:–

अथ मां रमन्तेस्ते,

रमणीयकथाः पथि।

आगच्छकञ्चिदध्वान,

चेतितपथकलमम्।।[3]

---

1 वृ0 क0 श्लोक संग्रह

2 बृ0 क0श्लो0 अष्टादश सर्गः 144 श्लो0

3 वृ0क0 श्लो0 सं0 अष्टादश सर्गः 82 श्लोक

अर्थात् मार्ग में मैंरा मनोरञ्जन के कारण अत्यन्त थकाव देने वाले मार्ग में भी थकान नहीं महसूस हुई। अतएव विशेषोक्ति अलङ्कार है।

अर्थातरन्यास **अलङ्कार :**

भामह ने इसकी परिभाषा दी है- उपन्यसनमन्यस्य मदथस्येहितादृते ज्ञेयः सोऽर्थातरन्यासः पूर्वाथानुगतो यथा।[1] अर्थात् प्राकरणिक अर्थ के अनुरूप यहाँ अन्य अर्थ का न्यास हो वहाँ अर्थात्रन्यास अलङ्कार होता है।

दण्डी का अर्थात्रन्यास अलङ्कार के सम्बन्ध में वक्तव्य इस प्रकार है- "किसी प्राकरिणक वस्तु का उपन्यास या विन्यास करके उस प्रस्तुत अर्थ के साधन, उपपादन में सर्मथ अप्रस्तुत वस्तु के उपन्यास को ही अर्थात्रन्यास अलङ्कार मानना चाहिए। जैसा कि इनकी रूचि या प्रकृति है। सभी अलङ्कार के अनगिनत भेद करते रहते हैं। इस अलङ्कार के भी अनेक प्रभेद कहे गये है।[2]

आचार्य मम्मट ने अलङ्कार के स्वरूप एवं प्रभेद के विषय में लगता है कि उद्भट्ट के कहीं अधिक ऋणी है। इन्होंने भी माना है कि वैधर्म्य के सहारे समर्थन किया जाये वहाँ अर्थातरन्यास अलङ्कार होता है-

सामान्य वा विशेषोवा तदन्येन सर्मथ्यते।

यत्तु सोऽर्थातरन्यास साधर्म्यतरेण वा।।[3]

अर्थात्रन्यास अलङ्कार के बहुत से उदाहरण हमारे इस विवेच्य कृति में परिलक्षित होता है। जिनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

ततः किंचिदिवाम्बायैः,

---

1 काव्यालङ्कार –षष्ठ उल्लास पृष्ठ सं0 390

2 दण्डी काव्यादर्श

3 काव्यप्रकाशः मम्मट कृतः दशम उल्लास श्री निवासशास्त्री पृ0सं0 534

यत्सत्यं कुपितोऽभवम्।

अकालज्ञा हि मतापि ,

पुत्रेण परिभूयते।।[1]

अर्थात् यह सत्य है कि मैंनें क्षणभर के लिये माता के प्रति क्रोधित हुआ। माता जिसे समय का कोई ज्ञान नहीं है। पुत्र के द्वारा अपमानित हुई।

यहाँ पर अज्ञानी माता पुत्र के द्वारा अपमानित की जाती है। अतएव अर्थातरन्यास अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण–

अचिन्यच्च कष्टेयमापदा,

पतिता यतः।

अत्यासन्नो अति चपलः,

को न दहाते वहिना।।[2]

अर्थात् जब कष्टों से घिर गया तब मैंनें सोचा अहो! यह कैसा संकट मुझ पर आ गया। कौन चपल व्यक्ति तीव्र जलती हुयी अग्नि से बाहर निकल जाते है। अर्थात् सभी निकल जाते हैं।

यहाँ पर सत्य कथन के द्वारा समर्थन किया गया है। अतएव अर्थात्रन्यास अलङ्कार है। एक अन्य उदाहरण में –

अथ वा नैव,

शोच्योऽयम्विपन्न महाधमः।

अविपन्नगुणानां हि,

---

1 बृ0 क0 श्लो0 सं0 अष्टादर्श सर्गः 635 श्लोक सं0

2 बृ0 क0 श्लो0सं0 चतुर्थ सर्गः 5 श्लोक सं0

किं विपन्न महात्मनाम्।।[1]

अर्थात् इसके पश्चात् अब उसकी शोचनीय दशा की ही तरह हैयदि व्यक्ति का धन नष्ट हो चुका है और उसके गुण नहीं नष्ट हुये है तब वह धनी ही है क्योंकि व्यक्ति के वस्त्र आदि धन है गुण ही उसका अमूल्य धन होता है।

यहाँ पर सत्य कथन के द्वारा मनुष्य के गुण को ही अमूल्य निधि माना जाता है। वस्त्र आभूषण आदि तो क्षणभंगुर विधि है जो कभी रहता है कभी नष्ट हो जाता है। परन्तु गुण मनुष्य में सदैव विद्यमान रहता है। अतएव अर्थातरन्यास अलङ्कार है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में अर्थातरन्यास अलङ्कार की मनोरम् छटा द्रष्टव्य है –

नराणां हिविपन्नानां,
शरणं मातृबान्धवाः।
त्याज्यास्तु निजशत्रुत्वा,
त्प्राज्ञेन पितृबान्धवाः।।[2]

अर्थात् मामा की तरफ से एक मात्र रिश्तेदार जो विपत्ति में सहायता करने आये, तुम्हारे पिता के भाई उसी समय से ईर्ष्या करते थे । बुद्धिमान व्यक्ति अपने शत्रु को छोड़ देना चाहिए।

यहाँ पर सत्य कथन के द्वारा समर्थन किया है कि विपत्ति में मित्र भी साथ छोड़ देता है। अतएव अर्थातरन्यास अलङ्कार है।

इस प्रकार अर्थातरन्यास अलङ्कार के बहुत से उदाहरण परिलक्षित होते है। जिसमें अर्थातरन्यास अलङ्कार को मनोरम् छटा दृष्टिगोचर होती है।

---

1 बृ0 कपा श्लो0 सं0 अष्टादश सर्गः 182 श्लोक सं0

2 बृ0 क0 श्लो0 सं0 अष्टादश सर्गः – 177 श्लोक सं0

काव्य गुण

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में काव्य के पोषक और सुशोभित करने वाले श्लेष, प्रसाद, समता समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति उदारता और कान्ति दस गुणों का उल्लेख मिलता है। परवर्ती आचार्यो द्वारा यही गुण कतिपय परिवर्तनों के साथ स्वीकार किए गये हैं। समय-समय पर इनकी संख्या में वृद्धि और न्यूनता होती रही। भरत ने इष्ट अर्थो से परस्पर सम्बद्ध पदों की क्लिष्टता का नाम 'श्लेष' दिया है। विद्वानों - द्वारा अविख्यात होने पर भी शब्द और अर्थ के संयोग से सरस होने के कारण शब्द का अर्थ स्फुट हो जाये वहां 'प्रसाद' होता है। जहां अलंकार और गुण स्वभाव से विद्यमान होकर एक दूसरे के सदृश तथा शोभावर्धक हों वहां 'समता' नामक गुण होता है। जहां उपमा से व्यंजित तथा प्राप्त अर्थो का यत्न पूर्वक अति संयोग किया जाय, फिर भी उद्विग्न न करे, उसवर्में 'माधुर्य' माना जाता है निन्दित तथा हीन होने पर जो बन्ध उदान्त का अवभावक हो जहां शब्द तथा अर्थ की सम्पत्ति हो, वह 'ओज' नामक गुण कहलाता है। सुश्लिष्ट सन्धि वाले, सुख-प्रयोज्य शब्दों से और सुकुमार अर्थो से युक्त रचना 'अर्थव्यक्ति' होती है। इसी प्रकार सौष्ठव से मिले हुए सुप्रकार से कथित अनेक अतिचित्र अर्थ-विशेषों से युक्त गुण का नाम 'उदान्त' है और जो शब्द बन्ध मन और कान का विषय हो तथा प्रयोग द्वारा आहृद कारक हो उसने भरतमुनि ने 'कान्ति' दिया है।[1] आचार्य भामह के गुण निरूपण में इनकी संख्या तीन ही मिलती है। आचार्य भामह में समस्त गुणों का निरूपण तीन गुणों में ही

---

1. श्लेषः प्रसादः समता समाधि माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरूदारता च कान्तिश्च काव्यस्यगुणा दशैते ।।
(नाट्यशास्त्र 17-96)

किया है। इनकी दृष्टि में गुण आचार्य भरतमुनि की भांति न होकर, वे काव्य के पोषक और सम्बर्धन में सहचर मात्र है।

आचार्य भामह ने गुणों की संख्या दस माना है। इनमें अधिक समस्त पद रहितः श्रवण-सुखदायक-रचना मधुर हुई और उसका गुण 'माधुर्य' हुआ। लम्बे समासों वाली समास बहुला रचना ओजवती और उसका गुण ओज होगा। इसी प्रकार सरल अर्थ से पूर्ण एवं आवाल वृद्ध द्वारा ग्राह्य रचना प्रसादवती होकर उसका गुण प्रसाद होगा। आचार्य दण्डी ने वामन की भांति रीतियों को पद रचना की वस्तु मानते हुए भरत के दस गुणों को शब्दगत और अर्थगत गुणों में विभक्त कर उन्हें बीस की संख्या में पहुंचाकर क्रान्तिदर्शी समीक्षा का गौरव प्राप्त किया है। भरतमुनि के दस गुणों को काव्य के पोषक और शोभात्पादक रूप में दर्शाया है, जबकि दण्डी ने गुणों को वैदर्भ मार्ग का प्राण कहा है। ये दस गुण इस प्रकार हैं - श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमार, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि।[1]

आचार्य मम्मट ने गुण के सम्बन्ध में कहा है - जो "विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पन्ति"[2] अर्थात् विभाव अनुभाव व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है उस रस का आस्वाद वेद्यान्त

---

1. श्लेषः प्रसादंः समता माधुर्य सुकुमारता
   अर्थव्यक्तिरूदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः।
   इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा दशगुणा स्मृताः।
   एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गोडवर्त्मनि ।।

   (काव्यादर्श, प्रथम प्रकाशन 41-42)

2. आचार्य मम्मट - काव्य प्रकाश - चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ सं0 119

सम्पर्कशून्य होता है उसी रस आस्वाद प्रक्रिया में विघ्न डालने वाले तत्व रस दोष कहलाते हैं तथा रस आस्वादन में वृद्धि करने वाले तत्त्व गुण कहलाते हैं। गुण को परिभाषित करते हुए कहा है -

ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलास्थितयोगुणाः ।।[1]

अर्थात् आत्मा के शौर्यादि धर्मो के समान प्रधान रस के जो अपरिहार्य उत्कर्षाधायक धर्म हैं ऐसे रसोत्कर्षक धर्म ही गुण कहलाते हैं ये गुण - माधुर्य, ओज, प्रसाद हैं। जो चित्त के द्रवीभाव के कारण श्रृङ्‌गार रस में रहने वाला है जो आह्लादकत्वस्वरूपत्व है वह माधुर्य गुण हैं। यह सामान्यतः श्रृङ्‌गार रस में रहता है किन्तु विप्रलम्भ एवं करूण रस में यह उत्तरोत्तर अधिक चमत्कार जन्य होता है -

आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृङ्‌गारें द्रुति कारणम् ।।[2]

वीर रस में रहने वाला चित्त के विस्तार की हेतु भूत दीप्ति ओज कहलाता है। यह विशेष रूप से वीर रस में रहती है किन्तु वीभत्स रौद्र रसों में इनका आधिक्य चमत्कार जन्य होता है -

दीप्यात्मविस्तृतर्हेतोरोजोवीररसः स्थितिः ।।[3]

---

1. मम्मट कृत - काव्य प्रकाश अष्टम उल्लास, सूत्र सं0 66
2. काव्य प्रकाश मम्मट कृत - काव्य प्रकाश सूत्र सं0 68, पृ0सं0 417
3. मम्मट कृत काव्य प्रकाश - अष्टम उल्लास, सूत्र सं0 69 पृ0सं0 418

शुष्क ईधन में अग्नि के समान या स्वच्छ जल के समान जो चित्त में सहसा व्याप्त हो जाता है वह सर्वत्र रहने वाला प्रसाद गुण कहलाता है -

शुष्के-धनाग्निवत् स्वच्छ जलवतसहसैव यः।
व्याप्नोत्यनत प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितः ।।[1]

हमारी विवेच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' महाकाव्य में ज्यादातर माधुर्य गुण, का वर्णन मिलता है। यत्किंचित ओज गुण का भी वर्णन मिलता है।

काव्य दोष

काव्यशास्त्रकार काव्य में दोषों को त्याज्य या हेय मानते हैं। आचार्यों ने दोषों को कुपुत्र के समान निन्दनीय या श्वेतकुष्ठ के समान चारूत्व को नष्ट करने वाला है।[2] यह निर्देश भी दिया है कि जहां तक हो सके कवियों को काव्य रचना के समय दोषों से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए। काव्य में दोष की हेयता को देखकर दोष स्वरूप के प्रति जिज्ञासा होना स्वाभाविक है।

---

1. मम्मट कृत - काव्य प्रकाश, अष्टम उल्लास, सूत्र सं0 70, पृष्ठ सं0 419
2. भामह - काव्यालंकार 1/9
   दण्डीकृत काव्यादर्श 1/7

दोष विवेचन भरतमुनि से ही प्रारम्भ हो गया है। भरतमुनि ने दोषों को गुणों का अभाव माना है। इस प्रकार दोषों की स्वतन्त्र स्थिति मानी है। दोष-स्वरूप पर विशद् विवेचन नाट्यशास्त्र में नहीं प्राप्त होता है।

भामह का दोष विवेचन भरतमुनि की अपेक्षा व्यापक है। भामह के अनुसार काव्य दोषों से वक्रोक्ति का हनन होता है तथा काव्य की शोभा अपकर्षित होती है दोषों के कारण अर्थ का बोध भली-भाँति नहीं हो पाता है।[1]

आचार्य भामह ने दोषों को कुपुत्र के समान निन्दनीय बताया है क्योंकि एक भी दोष युक्त पद काव्य को निन्दनीय बना देता है।[2] जिस प्रकार कुपुत्र से पूरा कुल निन्दित हो जाता है, उसी प्रकार दोषयुक्त काव्य काव्यज्ञों के द्वारा निन्दित होता है। भामह दोषों का सर्वथा त्याग ही कहते हैं जबकि नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने कहा है कि काव्य सर्वथा दोषयुक्त नहीं हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य भामह की अपेक्षा भरतमुनि दोषों की स्थिति के विषय में व्यापक दृष्टि रखते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य भामह की अपेक्षा भरतमुनि दोषों की स्थिति के विषय में व्यापक दृष्टि रखते है। परवर्ती आचार्यो ने यह स्वीकार किया है कि काव्य

---

1. भामह काव्यालंकार 1/47, 48, 49
2. सर्वथापदमप्येक न निगद्यमवद्यवत् ।
   विलक्षमणा हि काव्येन दुःसुतनेव निन्द्यते ।।
   भामह / काव्यालङ्.कार 1/9

में दोषों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता है। यह मानना समीचीन भी है कि काव्य में कोई न कोई दोष सम्भव हो सकता है। जो त्याज्य है वही दोष है जो काव्यास्वाद के विघातक हों।

दण्डी का दोष निरूपण आचार्य भामह पर ही आधारित है दोषों से दूर रहने का निर्देश देते हुए दण्डी ने श्वेत कुष्ठ के समान मानते हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार सुन्दर स्त्री के शरीर पर स्थित श्वेत कुष्ठ का चिन्ह उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार एक अल्पदोष भी काव्य के काव्यत्व को अपकर्षित कर देता है।[1]

वामन ने गुणों के विपर्यय को दोष माना है, उनका यह दोष स्वरूप आचार्य भरतमुनि ने दोषों के विपरीत स्थिति को गुण कहा है तथा वामन ने गुणों के विपरीत स्थिति को दोष कहा है।[2] वामन के दोष स्वरूप निरूपण से काव्य में गुणों का रस धर्मत्व सिद्ध होने पर सरस काव्य में उनकी स्थिति प्रायः निश्चित ही है। ऐसी स्थिति में यदि गुण सदैव सरसः काव्य में स्थित रहेगें तो दोष का सदैव अभाव ही बना रहेगा। अतः गुण विपर्यय रूप वाले दोषों का मानना उचित नहीं होगा।

आचार्य आनन्दवर्धन वामन के परवर्ती है। वामन ने दोष सामान्य का लक्षण प्रस्तुत किया है तथा दोषों का वर्गीकरण भी किया है। किन्तु

---

1. तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन ।
   स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ।।

   दण्डी / काव्यादर्श

2. गुणा विपर्ययत्मानो दोषाः ।

   वामन - काव्यांलकार सूत्र 2/1/1

आनन्दवर्धन ने दोष विवेचन पर ध्यान नहीं दिया है। कोई सामान्य लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है। ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में कुछ अंश तक दोष निरूपण प्राप्त होता है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन के लिए ध्वनि निरूपण ही प्रधान लक्ष्य था। सम्भवतः इसीलिए दोष-निरूपण पर ध्यान नहीं दिया।

ध्वनिवादियों ने प्रसंगवश कवि के आधार पर दोनों को दो भागों में विभाजित किया है। उनका विचार है दोष दो प्रकार का अशक्तिकृत तथा अशक्ति रूप होता है। इसमें भी आनन्दवर्धन ने अशक्तिकृत दोष को अव्युत्पत्तिकृत दोष की अपेक्षा अधिक हेय माना है। उन्होंने दोष को भावनात्मक माना।

काव्यशास्त्र में जिन दोषों का वर्णन किया गया है उनका बृहत्कथाश्लोकसंग्रह पढ़ते समय तकनीकि रूप से भान विरलता से ही हो जाता है इसके पीछे प्रमुख कारण यही प्रतीत होता है कि हम पात्रों के जीवन में होने वाली घटनाओं, मार्ग में आने वाली साहसिक कारनामों का यथार्थवादी रोचक वर्णन में हम तन्मय हो जाते हैं। कवि में यह प्रतिभा असाधारण रूप से विद्यमान है।

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह महाकाव्य को पढ़ते या सुनते समय पाठक या श्रोता मूलकथा का तन्मयता से रसास्वादन होता रहता है किन्तु बुधस्वामी एकाएक बीच में दूसरी कथा को और कभी-कभी तीसरी कथा को उपस्थित करते हैं जिससे मूलकथा विस्मृत हो जाती है जिससे कि कथा का प्रवाह एवं निरन्तरता तथा आस्वाद्यता में असाधारण गतिरोध किम् वा विघ्न उपस्थित हो जाता है। वैसे तो यह दोष महाकाव्य में कई जगह और सामान्य रूप

में प्रायः व्याप्त है। तथापि विशेष उदाहरण के रूप में त्रयोदश सर्ग में रानी मदनमंजुका के अपहृत हो जाने पर अष्टावक्र ऋषि की कथा के सन्दर्भ में इसके पश्चात पंचदश सर्ग में अपहृत मदनमंजुका को छुड़ाते समय मार्ग एकत् द्वित त्रित नामक तीन ब्राह्मणों की कथा तथा राजा वेगवान पुत्र मानसवेग और पुत्री वेगवती की कथा आदि। इस प्रकार पढ़ते समय अनेक उपकथाओं के आने से मूलकथा विस्मृत हो जाती है।

यह एक ऐसा दोष है जो सहृदय काव्य रसिकों को उद्विग्न कर देता है और इसी कारण बुधस्वामी का यह महाकाव्य जन-जन में लोकप्रिय नहीं हो पाया तथा काव्यशास्त्रमर्मज्ञ आलोचकों ने इसकी सहज प्रशंसा नहीं की है।

पञ्चम अध्याय

भाषागत् एवं शैलीगत वैशिष्ट्य

भाषागत वैशिष्ट्य

भूमिका :

'भाषा' उच्चारण अवयवों से निकली सार्थक शब्द परम्परा का नाम है। विश्व में अनेक भाषा-परिवार है जिनमें आरोपीय भाषा परिवार का अपना महत्त्व है। प्राकृत भाषा इसी आरोपीय परिवार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है जो अत्यन्त प्राचीन लोक भाषा रही है। यह आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। अलग-अलग क्षेत्रों में यह अलग-अलग स्वरूपों में विद्यमान थी, जिसे इसके क्षेत्रों या बोलने वाले लोगों के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम दिए गये हैं। प्राकृत के प्रसंग में लगभग दो दर्जनों नामों का उल्लेख मिलता है किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर केवल पांच ही प्रमुख भेद स्वीकार किए जाते हैं - 1. शौरशेनी 2. पैशाची 3. अर्धभागधी 4. मागधी 5. महाराष्ट्री।[1] काव्यों और नाट्यों की स्वाभाविकता बनाये रखने के किए दर्शकों को पूर्णतः ग्राह्य हो सकने की दृष्टि से काव्यों अथवा नाट्यों में सबसे पहले प्राकृत भाषा का प्रयोग होता रहा है।

गुणाढ्य कृत मूल 'बृहत्कथा' नामक महाकाव्य पैशाची भाषा में निबद्ध है। पैशाची भाषा एक बहुत प्राचीन बोली है जिसकी गणना पालि अर्धमागधी और शिलालेखों प्राकृतों से की जाती है। चीनी तुर्किस्तान के स्वरोष्ट्री शिलालेखों में पैशाची की विशेषतायें देखने में आती है।

जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार - पैशाची पालि का ही एक विभिन्न रूपों के साथ मिश्रित हो गयी है। वररुचि ने प्राकृत प्रकाश के दसवें परिच्छेद में पैशाची का विवेचन करते हुए शौरसेनी को उसकी आधारभूत भाषा स्वीकार किया है।

---

1. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 162

रूद्रट ने काव्यालंकार की टीका में नामि साधु ने इसे पैशाचिक भाषा कहा है।

षडभाषा चन्द्रिका के अनुसार - पैशाची और चूलिका राक्षस पिशाच और नीच व्यक्तियों द्वारा बोली जाती थी। यह भारत के उत्तर और पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती रही होगी।[1] भोज देव ने सरस्वती कण्ठाभरण में 244 में उच्च जाति के लोगों को पैशाची भाषा बोलने से मना किया है।[2] दण्डी ने पैशाची भाषा को भूत भाषामयी कहा है।[3]

पैशाची ध्वनितत्त्व की दृष्टि से संस्कृत पालि और पल्लववंश के दान पात्रों की भाषा से मिलती जुलती भाषा है। संस्कृत के साथ समानता होने के कारण इसमें श्लेष अलंकार की बहुत सुविधा है।

गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची भाषा में निबद्ध सबसे प्राचीन कृति है। इसे हम यह भी कह सकते हैं साहित्य ग्रन्थों का मूल आधार ग्रन्थ यही ग्रन्थ है। मूल बृहत्कथा आज अनुपलब्ध है।

---

1. संस्कृत प्राकृत साहित्य का इतिहास - डा0 जगदीश चन्द्र जैन 1961 - चौखम्बा प्रकाशन
2. भोजदेव सरस्वती कण्ठाभरण - पृ0 244
3. दण्डी काव्यादर्श, 1-38

बृहत्कथा श्लोक संग्रह

भाषा-शैली :

"बृहत्कथा श्लोक संग्रह" बृहत्कथा की नेपाली वाचना कहलाती है।

"बृहत्कथा श्लोक संग्रह" के संस्कृत रूपान्तर में कहीं-कहीं प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ। इसमें मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा (गुणाढ्य्कृत) का प्रभाव प्रतीत होता है, मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' में प्रतिज्ञा के कारण गुणाढ्य ने दोनों भाषाओं का प्रयोग न करके पैशाची भाषा का प्रयोग किया है।

कवि की भाषा में प्राकृत प्रयोगों का बाहुल्य है। इससे अनुमान किया जाता है कि वे मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' से उत्पात् तत्सम् पद ही है। काव्य शैली में सहज ही असाधारण प्रयोग चातुरी को अभिव्यक्त करता है।

भाषा सरल स्पष्ट और शब्दाडम्बर के बिना प्रवाहयुक्त है। अपने विशाल शब्द कोष अंशतः लुङ्ग सदृश अपने प्रयुक्त रूपों के द्वारा पुनरूद्धार करते हैं।[1]

1893 में नेपाल में बुधस्वामी ने 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' की रचना की इसलिए यह ग्रन्थ नेपाली वाचना में लिखी गयी है।[2]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला
2. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास - पेज नं0 367

"बृहत्कथा श्लोक संग्रह" की शैली सरल, स्पष्ट और विच्छित्तिशालिनी है। यदि शैली सरल न हो तो ग्रन्थ लोकप्रिय साहित्य में स्थान नहीं पा सकता। भाषा में आये हुए प्राकृत के अनेक शब्दों ने एक विशेषता उत्पन्न कर दी है। लेखक संस्कृत का पंडित है और उसे लुंङ् लकार के प्रयोग करने का शौक है।[1]

हर्षचरित में बाण ने 'बृहत्कथा' को हर लीला के समान माना है -

समुद्दीपितकंदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।

बृहत्कथा कस्य न विस्मयाय अपितु सर्वस्येव। गर्वविनाशाय भवतीव्यर्थः अद्भुत कथां वर्णनाद्वश्चर्याय ।[2]

अर्थात् कामदेव को जलाकर भस्म करना और पार्वती का श्रृंगार करना आदि परस्पर विरूद्ध बातों से शिव की लीला किसे नहीं विस्मित करती अर्थात् सभी को विस्मित करती है।

उसी प्रकार वर्णनों द्वारा कन्दर्प (कामदेव या नरवाहनदत्त) को प्रकाशित करने वाली एवं पार्वती के प्रति आराधना से युक्त गुणाढ्य की बृहत्कथा किसे नहीं विस्मित करती अर्थात् सभी को विस्मित करती है।

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डा0 हंसराज अग्रवाल, 1947
2. दण्डी कृत काव्यादर्श

शैलीगत वैशिष्ट्य

भूमिका :

भारतीय साहित्य में रस को पूर्ण परिपाक् की अवस्था तक पहुंचाने के लिए जिन बाह्य साधनों या उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें अलंकार, छन्द प्रकृति-चित्रण आदि का प्रमुख स्थान है। इनकी समुचित योजना से ही काव्य अधिकाधिक चमत्कारिक, व्यवहारिक एवं सरस हो पाता है। जिस प्रकार एक सामान्य कथन की अपेक्षा, भूमिका पूर्वक सलीके से कही गयी मृद्रु वाणी अधिक मनोहर होती है, उसी प्रकार अलंकार वस्तु चित्रण आदि से समन्वित काव्य की वस्तु, एवं रस योजना अधिकाधिक आनन्दायक होती है। बाह्य रूप को अलंकृत करने के साथ-साथ आन्तरिक रूप को नाम से अभिहित किया जाता है। शैली के अभाव में शरीरभूत भाषा आत्मभूत रस एवं भाव का सौन्दर्य प्रकट नहीं हो पाता।

सम्पूर्ण साहित्य जगत में 'शैली' को पाश्चात्य अर्थ में ही ग्रहण किया गया है परन्तु इससे हम यह नहीं कह सकते कि शैली भारतीय साहित्य जगत में था ही नहीं। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में शैली का विधान स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वेदों में विभिन्न मन्त्रों और उनके पाठों की प्रणालियां देखने को मिलती है। लौकिक संस्कृत साहित्य में तो 'शैली' के स्थान पर 'रीति' शब्द का ही प्रयोग हुआ है।

शैली (पाश्चात्य मत) में शैली का प्रयोग रचना की अभिव्यक्ति पद्वति के रूप में हुआ है।

शैली शब्द की व्युत्पत्ति :

'शैली' में प्रयुक्त शब्द 'शील' है। शील + अण् - प्रत्यय तथा स्त्रीलिंग 'ङ:थि' प्रत्यय लगने से शब्द का निर्माण हुआ है।[1]

'शैली' सम्बन्ध में निम्नलिखित परिभाषायें मिलती हैं जैसे 'शीले भय शैली' - शील में जो कुछ हो वही शैली है। शैली पक्ष का सम्बन्ध रचना प्रणाली से है। शैली विषय की अभिव्यक्तित रीति को कहते हैं। शैली साहित्यकार की एक वैयक्तिक विधा है। एक ही भाव या रस के साहित्य के लिए अभिव्यक्ति की भिन्न-भिन्न दशायें है। शैली 'अनुभूत विषय वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है जो उस विषग वस्तु' की अभिव्यक्ति का सुन्दर बनाते हैं।[2]

नालन्दा विशाल सागर के अनुसार - 'शैली' वाक्य रचना का वह ढंग जो लेखक की भाषा सम्बन्धी निजी विशेषताओं का सूचक होता है।

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त के अनुसार - 'भावों की कुशल अभिव्यक्ति ही शैली उहै। 'शैली' शब्द का मूल अर्थ ढंग अथवा प्रणाली है। साहित्यिक भाषा में वह अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा कोई भी रचना स्मरणीय मनमोहक एवं प्रभावोत्पादक बनकर पाठक के मन को उद्वेलित करती है।[3]

---

1. हिन्दी साहित्य कोश - सम्पादक - डा0 धीरेन्द्र वर्मा
2. तदैव
3. समालोचना शास्त्र - रघुनाथ प्रसाद साधक

राजेन्द्र गौड़ के शब्दों में - शैली उस कलापूर्ण साधन का नाम है, जो रमणीय आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से रचना के समस्त सरस तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा उचित शक्ति संचार करे।

कोशों में शैली के विभिन्न अर्थ - प्रथा, रिवाजों, प्रणाली, परिपाटी, वाक्य रचना प्रकार, कठोरता, शिला-प्रतिमा, मुगल कालीन शैली, व्याकरण सूत्र की संक्षिप्त वृत्ति, व्यवहार में काम करने का ढंग, आचरण आदि किए गये हैं।

सम्प्रति शैली के प्रमुख उपविभागों की दृष्टि से विवच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' विचारणीय है। बुधस्वामी की यह कृति अत्यन्त प्रगुण है वर्णन शैली सरल होते हुए भी सरस एवं विषयानुगुण है।

शैली :

नेपाली वाचना का बृहत्कथा श्लोक संग्रह के रचयिता बुधस्वामी की शैली ग्रन्थ में कहीं-कहीं अत्यन्त प्रवाहमयी एवं रुचिकर है। वे गुणाढ्य के प्रति ऋणी होने के कारण उत्तरदायित्व का भार वहन करते हुए भी ग्रन्थ की सजीवता तथा लेखक के जीवठ की तुलना भारतीय साहित्य में कम ही है। बुधस्वामी वस्तुतः मौलिक चिन्तन धारा का कवि था। उसने गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' को अपने काव्य का आधार मात्र चुना था।[1]

---

1. कथा सरित्सागर - डा0 एस.एन. प्रसाद तथा भारतीय संस्कृति

कहीं-कहीं पर इस ग्रन्थ में प्राकृत रूप भी पाये गये हैं जो सम्भवतः मूल ग्रन्थ 'बृहत्कथा' से ही लिए गए होगें।[1] बुधस्वामी की यह कृति अत्यन्त प्रगुण है। वर्णन शैली अत्यन्त सरल होते हुए भी सरस एवं विषयानुगुण है।[2]

कतिपय विद्वानों के मत में बुधस्वामी के ग्रन्थ 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' की शैली और स्वच्छ है। शैली के गुण के कारण ही यह ग्रन्थ लोकप्रिय हुआ।[3]

शब्दों से परिचय अथवा शब्दकोष का बृहत्त बृहत्तर और बृहत्तम या दूसरी ओर लघु लघुतर और लघुत्तम होना तीन बातों का द्योतक होता है - 1. जागतिक या जीवनगत अनुभव की मात्रा 2. चिन्तन-मनन किम्वा तर्क-वितर्क की सामर्थ्य के विकास की मात्रा 3. अर्थ-विशेष के लिए उपयुक्त शब्द के चयन करने की योग्यता की मात्रा।

इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत महाकाव्य के अध्ययन करने पर हमें कवि की मात्रा की शैली में महत्ता या व्यापकता प्रशंसनीय रूप में देखने को मिलती है। यह शैलीगत विशेषता उनको निश्चित रूप से एक बड़े कवि या महाकवि के रूप में स्थापित करती है।

---

1. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - तृतीय संस्करण
2. श्याम नारायण कपूर, पेज नं0 380
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास पेज नं0 169

षष्ठ अध्याय

रचनाकार का शास्त्रीय ज्ञान

ज्योतिष शास्त्र

इस महाकाव्य में ज्योतिष शास्त्र का .:. वर्णन मिलता है, बुधस्वामी ने कहीं-कहीं पर शुभ-अशुभ संकेतों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है। इस महाकाव्य में राजा ज्योतिष शास्त्र में विश्वास करता था। उनके राज्य में शाण्डिल्य और आदित्य शर्मा जैसे महान भविष्यवक्ता थे जो राजा विद्याधर द्वारा रात्रि में देखे गये स्वप्न की पूर्ण रूप से सत्य व्याख्या करते हैं। स्वप्न के विषय में रूमण्वन से बताता है कि अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण स्वप्न में गरूड़ पक्षी पर बैठे हुए भगवान विष्णु का साक्षात दर्शन किया है और मैंने उनसे प्रार्थना कि - हमारे मालिक को सन्तान दें। इस पर भगवान विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारें मालिक की इच्छायें पूर्ण होगीं और मुझे एक तीर दिया। मैंने प्रातःकाल देखा कि वह तीर मेरे बगल में था। आदित्य शर्मा ने प्रातःकाल इस स्वप्न की व्याख्या की कि शीघ्र ही राजा एक छः गुणों से विभूषित पुत्र प्राप्त करेगें। इसके पश्चात यौगन्धरायण में अपना स्वप्न बताया - आज 49 हवायें मेरे स्वप्न में आयीं और अपनी भुजा पर बंधा हुआ ज्योर्तिमय समूह मुझे हाथ में दिया। आदित्य शर्मा ने इस स्वप्न की व्याख्या की कि आप स्वामी के कवच की तरह शूरवीर पुत्र प्राप्त करेगें ऋषभ ने भी अपना स्वप्न जोड़ा - मैंने स्वप्न में गायों के एक बड़े झुण्ड को देखा उनमें से एक गाय ने कक्ष में प्रवेश करने को कहा: जहां मैंने आश्चर्यजनक चित्रकारी देखी। आदित्य शर्मा ने व्याख्या की तुम्हारा पुत्र निश्चय ही चित्रकला में निपुण होगा। इसके कुछ दिन पश्चात ही आदित्य शर्मा की ये सभी भविष्यवाणियां सच साबित हुई।[1] इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर शाण्डिल नामक ब्राह्मण जो प्रसिद्ध भविष्य वक्ता था। एक बार

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्गः - 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70

जब राजा प्रद्योत सिंहासन पर बैठना चाहता था पूर्व रात्रि में उसने स्वप्न में देखा कि एक विचित्र सात रंग के पैरों वाली विशेष चिड़ियां गर्व से आयी और मेरे सर पर बैठ गई। इस स्वप्न का क्या अर्थ हुआ कृपया बताइए इस पर शाण्डिल्य नाम का ब्राह्मण कुछ नहीं बोले तो राजा को कष्ट हुआ और भयभीत हो गये। कांपती हुई आवाज में पुनः आग्रह करके पूछा - इस पर ब्राह्मण ने कहा - सुनिए राजन्। जा अहित है वह निश्चय ही अन्त में हित होगें। इस सवमय सिंहासन पर जो भी सहमति उसे बैठता है वह निश्चय ही सात दिनों के अन्दर ब्रज प्रहार से मारा जायेगा। यह सुनकर राजा अत्यन्त क्रोधित हुआ और आदेश दे दिया कि इस ब्राह्मण के कपोल स्थित नेत्रों को निकाल लिया जाय। अन्य मन्त्रियों ने मृदुता पूर्वक समझाया कि महाराज इस उन्मत (पागल) व्यक्ति के कथन को इस प्रकार लेना बुद्धिमत्ता नहीं है यह अपने नेत्र से वंचित रहने योग्य नहीं वरन् कारावास के योग्य है बाद में यदि इसकी बात असत्य हुई तो कठोर सजा का पात्र होगा। इसके पश्चात पापों को शान्त करने के लिए पर्वत पर चले गये और वहां सात रात्रि तक ठहरे। अन्तिम सातवें दिन के मध्य में अचानक आकाश में बादलों के मध्य में तेज चमकदार रेखा खिंची और तेज तूफान चलने लगा और बारिस होने लगी चट्टान से टकराने की आवाज ने और भयंकर आंधी ने राजा की प्रति कृति के टुकड़े-टुकड़े कर दिया।[1] इस प्रकार ब्राह्मण की भविष्यवाणी सत्य हुई राजा ने सम्मान सहित शाण्डिल्य नामकम ब्राह्मण को बुलाकर क्षमा मांगकर उन्हे बहुत से पुरस्कारों से पुरस्कृत किया।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुभ-अशुभ संकेतो का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है। इसलिए स्वप्न के निष्ट

---

1. बृहत्कथा श्लोग संग्रह - द्वितीय सर्गः - 60, 61, 62, 63, 69, 70, 72

अनिष्ट फल के विषय में राजा ने शाण्डिल्य नामक ब्राह्मण से पूछा कि मैंने स्वप्न देखा कि मैं बाहर घूमने के लिए गया हूँ। मैंने वहां एक विशाल और नशे में धुत मतवाले हाथी को आते हुए देखा इसके फल के विषय में बताइए, इस पर ब्राह्मण ने कहा महाराज। हाथी को भगवान गणपति कर रूप माना है, विघ्न बाधक नहीं अपितु विघ्न का हरण करने वाला माना है। इसके फल के विषय में कहता है महाराज विघ्न बाधा समाप्त हो चुकी है, आप पृथ्वी की रक्षा करिए।[1]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - द्वितीय सर्गः - 38, 45, 46

संगीत वर्णन

साहित्यसंगीतकला विहीनः ।
साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः ।।

साहित्य, संगीत और कलाओं से विहीन मनुष्य पूंछ-सींग विहीन पशु के समान होते हैं। ये शब्द आचार्य भर्तृहरि के मुख से आज से दो हजार वर्ष पूर्व निकले और दिग्दिगन्त को प्रतिध्वनित करते हुए आकाश में विलीन हो गये। आचार्य बुधस्वामी ने भर्तृहरि की इस पंक्ति को पूर्णतया सार्थक सिद्ध किया है और साहित्य संगीत की विशेषताओं से परिपूर्ण महाकाव्य की रचना की है। यह मानव जीवन के किसी भी पक्ष या क्षेत्र से अछूता नहीं रह गया है। यह तथ्य इस महाकाव्य को अतिरिक्त रूप से आकर्षक बनाता है। इस महाकाव्य में संगीत प्रेम की तो अत्यन्त मनोहर झलक दृष्टिगोचर होती है।

जिन महर्षियों को सत्य का साक्षात्कार हो चुका हो उन्हें 'आप्त' कहा जाता है। आप्त महापुरूषों के वाक्य शब्द कहलाते हैं। नाट्य किम्बा काव्य के क्षेत्र में महर्षि भरत आप्त हैं उन्होंने महर्षि भरत का अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नहीं है जो नाट्य में न आता हो। इसी के फलस्वरूप महर्षि ने इस नाट्य के अन्तर्गत गीत, वाद्य और नृत्य शब्द का वर्णन किया है।

संगीत से अन्यथा दुर्लभ लौकिक और अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, आनन्द सच्चिदानन्द ईश्वर का स्वरूप ही है। संगीत शब्द

की व्युत्पत्ति सम् (सम्यक्) और 'गीत' दोनों शब्दों से हुई है। मौखिक गाना ही गीत है। सम् अर्थात सम्यक् शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'अच्छा'। 'वाद्य' और 'नृत्य' दोनों के मिलने से ही 'गीत' 'अच्छा' बन जाता है -

गीतं वाद्यं . . नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।[1]

हमारे संगीत शास्त्र के अवतरण में तीन परम्परायें हैं - 1. वेद परम्परा 2. आगम और पुराण की परम्परा 3. ऋषि प्रोक्त संहिता परम्परा। वेद परम्परा में हमारे संगीत की उत्पत्ति सामवेद से बतायी गयी है -

सामवेदादिदं गीतं सञ्जग्राहपितामहः ।[2]

गीत और वाद्य में क्रमशः नारद और स्वाति ब्रह्मा के प्रथम शिष्य हुए। कहा जाता है कि नाटक में उपयोग करने गीत और वाद्य को इन दोनों से नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि से सीखा।

संगीत शास्त्र से महत्त्व :

संगीत आनन्द का आर्विभाव है और आनन्द ईश्वर का स्वरूप है। संगीत के द्वारा ही दुःख के लेश तक से भी सम्बन्ध न रखने वाला सुख मिलता है दूसरे विषयों से होने वाले सुखों के ओ या पीछे दुःख की सम्भावना है परन्तु इस दुःखपूर्ण संसार में संगीत स्वर्गवास है। संगीत ईश्वर का स्वरूप है इसी कारण जो लोग संगीत का अभ्यास करते हैं वे तय, दान, यज्ञ, कर्म योग आदि के कष्ट न झेलते हुए मोक्ष मार्ग तक पहुंचते हैं। योग और ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ आचार्य इस सम्बन्ध में कहते हैं -

वीणावादन तत्त्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्ष मार्गं प्रयच्छति ।।[3]

---

1. संगीत शास्त्र पेज नं0 6
2. संगीत शास्त्र पेज नं0 6
3. याज्ञवलक्य स्मृति

संगीत योग की विशेषता यह है कि इसमें साध्य और साधन दोनों ही सुख स्वरूप हैं।

भक्ति मार्ग में संगीत के साथ भगवत् भजन करने से मन शीघ्र ही ईश्वर के नाम स्वरूप में लीन हो जाता है। इसके दो कारण हैं - संगीत के बिना नामोच्चारण मात्र करते समय मुख मात्र नाम का ही रटन करता रहता है, परन्तु मन दसों दिशाओं में फिरता रहता है। परन्तु संगीत के साथ नाम जप या गुणगान करते समय संगीत की मनोहर शक्ति एक दृढ़ रज्जु बनकर भगवान के नाम रूप को साक्षात् जोड़ देती है। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि ईश्वर संगीत से जितना प्रसन्न होता है उतना दूसरे अन्य उपायों से नहीं।

अतएव संगीत शास्त्र की भारतीय साहित्य तो क्या सम्पूर्ण जगत् की महत्ता स्वयं सिद्ध है। इसी महत्ता के कारण कहा भी गया है -

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः ।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिङ्.गलाः ।।
सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती
विसन्ये पक्षगाधर्न्वदेवदानवमानवाः ।।[1]

संगीत समस्त जीव समूह को परम् आनन्द का वरदान देकर अपनी ओर खींच लेता है।

पशुर्वेति शिशुर्वेति वेत्ति गानरसंफणी।

संगीत रूपी एक मात्र साधन से धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है।

संगीत, ध्वनि ग्राम व मुच्छर्ना से बनता है - ध[illegible]।

---

1. संगीत चिन्तामणि पेज नं0 8, के. बासुदेवाशास्त्री

स्वर :

किसी भी सप्त स्वर मूर्च्छना का आदिम स्वर ही इस मूर्च्छना का स्थायी स्वर या अंश स्वर होता है। मेल-सिद्धान्त में जो महत्त्व स्वर का है वही महत्त्व मूर्च्छना पद्धति में सप्त स्वर मूर्च्छना के आरम्भक स्वर का है, स्थूल रूप में यों कहा जा सकता है कि मूर्च्छना बदलने से ठाठ बदल जाता है। ठाठवादी प्रत्येक ठाठ के आरम्भक स्वर को 'स' कहेगा, परन्तु मूर्च्छनावादी मूर्च्छना के स्वरों की संज्ञा (नाम) में परिवर्तन नहीं करेगा। सात स्वरों को क्रमशः मध्यम ग्राम के ऋषभ, गांधार, मध्यम पंचम धैवत निषाद और षडज कहेगा।[1]

यद्यपि स्वर की उत्पत्ति दो तीन या चार श्रुतियों से उत्पन्न होता है तथापि वह उनमें से एक नियत या विशेष श्रुति पर ही कुछ देर ठहरता है वही 'स्वर' कहा जाता है।[2]

मूर्च्छना :

क्रम युक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं। मूर्च्छना शब्द 'मूर्च्छ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'मोह' और 'समुच्छाय' 'उत्सेध', 'उभार', 'चमकना', व्यक्त होना है।[3]

---

1. संगीत चिन्तामणि - पृष्ठ सं0 126
   आचार्य बृहस्पति - प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस ।
2. संगीत शास्त्र - के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति
3. मतंग भरतकोश - पृष्ठ सं0 502

'श्रुति की मृदु' उतरी हुई अवस्था को अवस्था को कुछ लोगों ने मूर्च्छना कहा है। कुछ लोगों का कथन है कि राग रूप अमृत के हद (सरोवर) में गायकों और श्रोता के हृदय का निमग्न होना ही मूर्च्छना है। परन्तु भरत-संगीत में 'मूर्च्छना' का अर्थ सात स्वरों का क्रम पूर्वक प्रयोग ही है।[1]

एक स्वर से प्रारम्भ करके क्रमशः सातवें स्वर तक आरोहण करने के पश्चात उसी मार्ग से अवरोह करने को मूर्च्छना कहते हैं। हर एक ग्राम में हर एक स्वर से शुरू करने पर सात मूर्च्छनायें उत्पन्न हो सकती है।[2]

यथा गन्धर्वदत्ता ने वीणा के तन्त्र को ज्यों ही व्यवस्थित किया और धीरे से अंगुली के अग्रभाग से हुआ और छठें धाविता स्वर ग्राम और विश्राम धीरे-धीरे स्वयं ही क्रम से चलने लगी।

इसके पश्चात दूसरा फिर तीसरा फिर तीनों तन्त्र गान्धार आदि मन्थर गति से चलने लगा।[3]

---

1. संगीत शास्त्र - के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति
2. संगीत शास्त्र - के. वासुदेव शास्त्री
3. ततस्तन्त्रीषु गान्धारे जृम्भमाणासु मन्थरम् ।
   गन्धर्वदत्तामवदं भीरू संगीयतामिति ।। ।47 ।।
   सा प्रगल्भापि गान्धारमाकर्ण्यामरगोचरम् ।
   तथा च धृष्टमादिष्टा बालाशालीनतां गता ।। ।48 ।।

बृहत्कथा श्लोक संग्रह
सप्तदश सर्गः

दूसरी तरफ राजकुमार उदयन घोषवती नामक संगीत विद्या के अच्छे ज्ञाता थे। फिर भी कुमार उदयन संगीत विद्या की शिक्षा के लिए भोगवती नामक नगर गये थे वहां से वह इतनी मधुर विद्या सीखकर आये तो घोषवती नामक वीणा वादन इतना आकर्षित था कि वृक्ष की स्थिर होकर सुनने लगे।[1]

इसी प्रकार नारदीय शिक्षा के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह सामवेद की शिक्षा है जिसमें इसके अतिरिक्त गान्धर्व विषयक अंश मूल शिक्षा का अभिन्न भाग रहा है। शिक्षाकार नारद ने गान्धर्व विषयक मान्यताओं का संग्रह है नारदीय शिक्षा में किया। नारदीय शिक्षा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार की उपस्थिति होती है।[2]

---

1. ततश्चारभ्य दिसादुदयाचलचारिणाः ।
   नागानुदयनोडगृहणाद्रम्यैर्घोषवतीरूतैः ।। ।50 ।।
   दान्तव्यालगजारूढः सिंहादिव्यालवेल्लितः ।
   व्वणद्घोषवतीपाणिरायाति स्म तपोवनम् ।। ।5। ।।

   :(बृहत्कथा श्लोक संग्रह)
   पंचम सर्गः

2. शिक्षा में उपलब्ध गान्धर्वविषयक अंश की अस्तव्यस्तता तथा यथास्थानतः को देखकर प्रतीत होता है कि गान्धर्व का संग्रह अंश मूल शिक्षा बाद में जोड़ा गया।

नारदीय शिक्षा जो सर्वप्रथम नारद द्वारा प्राप्त किया गया था। इसके पश्चात वृत्र शत्रु इन्द्र ने नारद द्वारा प्राप्त किया था इसके पश्चात यह कहा जा सकता है कि राजा विराट की पुत्री उन्तरा ने अर्जुन द्वारा प्राप्त किया था इसके पश्चात राजा परीक्षित ने अपनी माता उन्तरा से इसे प्राप्त किया था इसके पश्चात जनमेजय ने परीक्षित से इसे प्राप्त किया था।[1]

---

1. नारदेव ततः प्राप्तं नारदाद्वृत्रशत्रुणां ।
अर्जुनेन ततस्तस्माद्विराटसुतया किल ।।
परीक्षितप्राप्नुयान्मातुस्ततस्तसोऽपि जनमेजयः ।
इति क्रमागतं तातस्तातादागमितं मया ।।
(बृहतकथा श्लोक संग्रह सप्तदश सर्गः श्लोक सं0 115, 116)

सप्तम अध्याय

पात्रों का चरित्र-चित्रण

पात्रों का चरित्र चित्रण

यह महाकाव्य अनेक कथाओं एवं उपकथाओं में निबद्ध है। इसमें बहुत से स्त्री, पुरूष पात्र हैं। इनमें प्रमुख अवन्तिवर्धन राजा उदयन, उदयन पुत्र नरवाहनदत्त, गोमुख, मरूभूतिक, तपन्तक, हरिशिखा प्रमुख पात्र हैं तथा राजा पालक, गोपाल शान्डिल्य नामक भविष्यवक्ता, राजा अवन्तिवर्धन, उत्पलहस्तक, नारदमुनि, ऋषभ, यौगन्धरायण रूमण्वन वसन्तक, नक्षत्रणास्त्री आदित्य शर्मा, मथुरा के राजा उग्रसेन पुंक्वस्क, विश्विल, कौशिक मुनि पुत्र अमित गति, मरूभूतिक, वीणादत्तक, अष्टावक्र नामक ऋषि, अंगीरस ऋषि, सानुदास रत्नवेत्ता वेगवान ऋषि एकत, द्वित, त्रित प्रशान्तक नामक ब्राह्मण बुद्धवर्मा सागरदत्त का मित्र, नन्द अपनन्द गौणपात्र है तथा स्त्री पात्रों से भी युक्त है इनमें प्रमुख पद्मावती, वासवदत्ता, मदनमंजुका पात्र है। इसके अतिरिक्त उत्पलहस्तक पुत्री सुरसमंजरी माता मृगयावती, उग्रसेन पुत्री मनोरमा, विश्विल पुत्री रत्नावली, मुद्रिका लतिका, गन्धर्वदत्ता, सुयामुनदत्ता, अष्टावक्र पुत्री सावित्री अष्टावक्र भाई पुत्री अमृता गौण पात्र है।

इसमें मुख्य नायक नरवाहनदत्त अत्यन्त उदार हृदय वाले पुरूष हैं वे सब विद्याओं निपुण होने के साथ साथ एक कुशल चिकित्सक भी है तभी तो कौशिक पुत्र अमित गति के पंजों द्वारा घायल होकर चेतनाहीन होने पर भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक शल्यक्रिया करके शीघ्र ही उसे ठीक कर दिया। कुमार श्रृंगार प्रिय नामक है। इसीलिए उनके 2। विवाहों का विवेचन मिलता है परन्तु इस महाकाव्य में साथ ही विवाहों का वर्णन मिलता है।

कुमार नरवाहनदत्त के मित्र गोमुख राजा उदयन के मंत्री ऋषभ के पुत्र हैं जो एक विदूषक की भूमिका अदा करते हैं, ... हास

परिहास के क्षणों उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। जैसे विवाह के अवसर पर कुमार द्वारा वधू पक्ष की ओर भेजे जाने पर पहचान लिए जाने पर वहां सभी स्त्रियों ने गोमुख को पकड़कर मुख को काला कर वापस् भेज दिया। कुमार के सामने आये तो क्रोधित हो गये। गोमुख सरल हृदय तथा बुद्धिमान व्यक्ति है। ये कुमार नरवाहनदत्त के परम मित्र हैं, इनकी मित्रता इतनी प्रगाढ़ है कि कुमार इनके बिना भोजन तक नहीं करते थे। एक बार गोमुख के मानसिक रूप से बीमार हो जाने पर भोजन त्याग दिया, अत्यन्त चिन्तित हुए और अपने मित्र हरिशिखा से गोमुख को शीघ्र कुशल चिकित्सक को दिखाने को कहा।[1]

इसी प्रकार हरिशिखा और रूमण्वन भी कुमार नरवाहनदत्त के परम मित्र हैं। ये नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्र हैं तथा अच्छे सलाहकार हैं। कुमार को अच्छे बुरे की सलाह देते हैं। ये सरल हृदय तथा बुद्धिमान व्यक्ति हैं।

मरूभूतिक और रूमण्वन कुमार नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्रों में से हैं। ये सरल हृदय, बुद्धिमान तथा कुमार नरवाहनदत्त के सलाहकार हैं। मरूभूतिक और रूमण्वन हमेशा कुमार नरवाहनदत्त के साथ रहते थे। अन्य गौण पात्रों में राजा पालक वत्स देश के राजा हैं अत्यन्त सरल हृदय तथा प्रजा प्रिय राजा थे। राजा धर्म प्रिय प्रजा कें सुख दुःख का स्वयं वेश बदल कर लगाते थे।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह षष्ठ सर्गः

राजा गोपाल पूर्ण रूप से धार्मिक विचारधारा के थे। राजा पालक को अपने परिवार के प्रति निष्ठावान थे। बृद्ध हो जाने पर अपने भाई गोपाल को सिंहासन पर बैठाकर स्वयं वन चले गये।[1] इसी प्रकार राजा पालक अत्यन्त सरल हृदय प्रजा प्रिया शासक थे। प्रजा, के सुख, दु:ख का अपने भाई गोपाल की तरह स्वयं वेश बदलकर पता लगाते थे, परन्तु कभी-कभी प्रजा के प्रति उदासीन हो जाते थे। राजा पालक धर्म में आस्था रखते थे तभी तो एक ब्राह्मण से धर्म के विषय में जानना चाहा तथा दीक्षा रूपी संस्कार को ग्रहण किया। धर्म धार्मिक कार्यो में इतना लीन हो गये कि प्रजा के प्रति उदासीन रहने लगे। राजा पालक अपने भाई राजा गोपाल के आज्ञा पालक थे, तभी धार्मिक कार्यो में लीन हो जाने पर सभी मन्त्रिगण डर गये तथा उन्हें अपने भाई के समक्ष की गयी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया तो वे पुन: बड़ों का आशीर्वाद लेकर प्रजा कार्यो में लीन हो गये।[2]

राजा पालक के राज दरबार में शान्डिल्य नामक प्रसिद्ध भविष्य वक्ता थे, इनकी हर भविष्यवाणी सच निकलती थी। ये निष्ट-अनिष्ट दोनों फलों का सत्य बताते थे। तभी तो राजा ने अपने स्वप्न में आये हाथी को देखने का फल पूछा, ब्राह्मण इसे भगवान गणपति का स्वरूप तथा विघ्न बाधाहारक वालों बताया तथा सब कार्य नि:संकोच करने को कहा। इसके विपरीत राजा प्रद्योत द्वारा स्वप्न में आयी हुई सात रंग की चिड़िया को देखने का फल पूछा तब अनिष्ट फल की आशंका से चुप हो गये। काफी पूछने पर बताया कि राजन आप अभी सिंहासन पर न बैठे अन्यथा आज से सातवे

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह :2/105 द्वितीय सर्ग:
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह 2/105 द्वितीय सर्ग:

दिन आप तीव्र तूफान में मारे जायेगें। इस पर राजा क्रोधित हुए और ब्राह्मण को सजा दे दी परन्तु ब्राह्मण की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।[1] इस प्रकार शान्डिल्य ऋषि अत्यन्त सिद्ध पुरूष तथा कुशल भविष्यवक्ता थे।

इसी प्रकार राजा अवन्तिवर्धन अवन्ति देश के राजा थे। राजा उदयन के पिता थे। राजा अवन्तिवर्धन अत्यन्त उदार हृदय तथा प्रजा प्रिय राजा थे। उनके राज्य में प्रजा प्रसन्न थी। प्रजा में हितों का सदैव ध्यान रखते थे। प्रजा के मनोरंजनार्थ प्रत्येक वर्ष उत्सव का आयोजक करते थे। उसमें राजा भी प्रजा के समक्ष हिस्सा लेते थे तथा भरपूर मनोरंजन करते थे।

उत्पलहस्तक एक वीर वनाधिपति हैं तथा सुरस मंजरी के पिता हैं। अत्यन्त वीर और साहसी सेनापति थे। अपनी पूर्ण सेना का प्रतिनिधित्व करते थे। इसके साथ-साथ वह एक अच्छे पिता भी थे, अपने पिता होने फर्ज का अच्छे ढंग से निर्वाह किया। नारद मुनि अत्यन्त सौम्य परन्तु क्रोधी ऋषि थे, अपने प्रचण्ड क्रोण के कारण ही उन्होंने ऊपर से मदिरापान से मस्त होकर जा रहे इफ्फक के गले से मधुमक्खी के समान माला गिरने से अत्यन्त क्रोधित होकर शाप दे दिया। नारद मुनि क्रोधी होने के साथ-साथ शीघ्र ही क्षमाशील पुरूष हैं तभी तो उन्होंने शीघ्र ही इफ्फक को क्षमा प्रदान कर शाप की अग्नि से मुक्ति का उपाय बताया। जिससे शीघ्र ही वह शाप मुक्त हो गये।

इसी प्रकार ऋषभ भी बृहस्पति के समान विद्वान थे, उनकी विद्वता काफी प्रसिद्ध थी। ये गोमुख के पिता थे तथा अवन्ति देश के राजा

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह 2/105 द्वितीय सर्गः

उदयन के **परम मित्र** तथा विद्वान मंत्री थे। ये अत्यन्त सरल हृदय तथा बुद्धिमान व्यक्ति थे। इसी प्रकार यौगन्धरायण भी विद्वान व्यक्ति थे, ये नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्रों में से थे। राजकुमार नरवाहनदत्त के अत्यन्त प्रिय थे हमेशा साथ-साथ रहते थे, और राजकुमार के अच्छे सलाहकार थे। विपरीत परिस्थितियों में अच्छी एवं उचित सलाह देते थे। इसी प्रकार रूमण्वन भी राजा उदयन के परम मित्र के पुत्र थे तथा राजकुमार नरवाहनदत्त के परम मित्र थे। ये राजकुमार के चार परम मित्रों में से थे। बचपन से ही साथ-साथ रहते थे। गोमुख यौगन्धरायण आदि के भी परम मित्र थे। तभी एक बार गोमुख के बीमार पड़ जाने पर अत्यन्त चिन्तित हो जाते हैं तथा राजकुमार से किसी कुशल चिकित्सक को दिखाने की सलाह देते हैं। यौगन्धरायण अत्यन्त सरल एवं निर्भीक व्यक्ति थे। किसी से भी डरते नहीं थे। तभी तो राजकुमार की किले की रक्षा के लिए नियुक्त किये जाने के पश्चात राजा के उत्सव यात्रा को देखने की इच्छा होने पर यौगन्धरायण अकेले ही किले की रक्षा के लिए अकेले ही रहने के लिए तैयार हो गये।

इसी प्रकार रूमण्वन भी राजकुमार नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्र थे, अत्यन्त सरल व्यक्ति थे और इसी प्रकार बसन्तक भी अच्छे और सरल और हंसमुख व्यक्ति थे। इस बृहत्कथा श्लोक संग्रह नामक विवेच्यकृति में बसन्तक ने बिदूषक की तरह भूमिका निभाई है। ये राजकुमार नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्र थे बसन्तक मजाकिया प्रकृति के व्यक्ति थे। मजाकिया तथा सभी को हंसाते रहने के बावजूद कभी-कभी क्रोधित भी जो जाते थे तथी एक बार राजकुमार के विवाह के अवसर पर अपनी महारानी को देखने के लिए भेजे जाने पर जब वेश बदलकर जाने पर भी जब पहचान लिए जाते हैं तो री द्वारा मुख पर कालिख लगाकर वापस राजकुमार के पास भेजे

जाते हैं तो अत्यन्त क्रोधित होते हैं। इसी प्रकार नक्षत्र शास्त्री आदित्य शर्मा अत्यन्त विद्वान नक्षत्र शास्त्री थे, अच्छे भविष्यवक्ता थे। उनकी भविष्यवाणी प्रायः सच हुआ करती थी। अत्यन्त विद्वान व्यक्ति थे।

इसी प्रकार मथुरा के राजा उग्रसेन का चरित्र तो समस्त जगत में प्रसिद्ध है। राजा उग्रसेन अत्यन्त सरल और सीधे व्यक्ति थे तभी तो अपनी के विवाह करने के सन्दर्भ में द्रुमिल नामक राक्षस द्वारा ठगे जाते हैं। वह साधु वेश में आता है तथा पुत्री का हाथ मांगता है तो शीघ्र ही विश्वास कर उग्रसेन अपनी पुत्री मनोरमा का विवाह उससे कर देते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात वह द्रुमिल नामक राक्षस छोड़कर चला जाता है। उग्रसेन की पुत्री के उसी से कंस नामक पुत्र उत्पन्न होता है। जो अन्त में कृष्ण द्वारा मारा जाता है।

पुंक्वस्क एक महान शिल्पी था, वह एक मात्र आकाश या के विषय में तथा उसे बनाना जातना था वह विश्विल का दामाद तथा रत्नावली का पति था। पुंक्वस्क अत्यन्त सरल व्यक्ति अपने ससुर का अत्यन्त सम्मान करते थे। विश्विल को राजा द्वारा आदेशित किए जाने पर पुंक्वस्क तुरन्त ही अपनी आकाश यन्त्र की विद्या को प्रकट कर आकाश यान बनाने को तैयार हो जाते हैं।

इसी प्रकार विश्विल रत्नावली के पिता तथा पुंक्वस्क के दामाद थे। राजा उदयन के दरबार में सेवक थे। अत्यन्त सज्जन और सौम्य व्यक्ति थे। इसी प्रकार कौशिक मुनि पुत्र अमित गति अत्यन्त वीर एवं साहसी व्यक्ति था तभी शिकार के दौरान वह शेर के लौह पंजों से घायल हो जाते

हैं तथा राजा नरवाहन द्वारा चिकित्सा किये जाने पर होश में आते हैं। मरूभूतिक भी राजकुमार नरवाहनदत्त के परम प्रिय मित्रों में से राजकुमार और नरवाहनदत्त मरूभूतिक हरिशिखा आदि मित्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए युवा हुए। मरूभूतिक राजकुमार के हरिशिखा से भी अधिक विश्वसनीय थे इसीलिए तो गोमुख दशा बताने पर राजकुमार को नहीं विश्वास हुआ तो मरूभूतिक को देखने के लिए भेजते है।[1] मरूभूतिक अत्यन्त सरल हृदय सौम्य एवं व्यवहार कुशल तभी तो रूमण्वन ने कहा आपके अच्छे व्यवहार के कारण ही आपका परम्परागत दास हो गया है।[2] इसी प्रकार अष्टावक्र ऋषि जो समस्त जगत में प्रसिद्ध हैं उनके सावित्री नाम की पुत्री थी। अष्टावक्र ऋषि अत्यन्त सौम्य और अपने कर्तव्यों का वहन करने वाले थे तभी अपनी पुत्री का विवाह अंगीरस के साथ निश्चय परन्तु उनकी सगाई पहले ही किसी से हो चुकी थी इस पर उन्हें अत्यन्त कष्ट का अनुभव हुआ।[3] इसी प्रकार अंगीरस ऋषि अत्यन्त मृदुभाषी तथा सौम्य ऋषि थे इसीलिए वृष नाम के अष्टावक्र के भाई द्वारा अमृता विवाह करने के लिए कहने पर वे तुरन्त तैयार हो गये। अत्यन्त सरल हृदय के ऋषि थे तभी देवि अमृता द्वारा कहे जाने पर कि आप पहले देवी सावित्री में आसक्त थे तो उन्होंने उसे कई तरह से आश्वस्त किया।[4]

इसी प्रकार सानुदास अत्यन्त सीधा एवं कुशलरत्नवेत्ता था। परन्तु अत्यन्त विलासी प्रवृत्ति का भी था। अपनी इस विलासी प्रवृत्ति के कारण ही धन से हीन होकर अत्यन्त दरिद्रता अवस्था में आ गया था।[5]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह सप्तम सर्गः
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह सप्तम सर्गः
3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह द्वादश सर्गः
4. बृहत्कथा श्लोक संग्रह द्वादश सर्गः
5. बृहत्कथा श्लोक संग्रह अष्टादश सर्गः

सानुदास अत्यन्त साहसी एवं निर्भीक व्यक्ति था तभी समुद्री तूफान में जहाज के डूब जाने पर किसी तरह से अत्यन्त कठिनाई से समुद्र के किनारे आया।[1]

इसी प्रकार राजा वेगवान जो वत्स देश के राजा थे। अत्यन्त वीर थे। अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान थे। तभी बाद में राज-कार्य अपने पुत्र मानसवेग को सौंपकर पुत्री के छोटी होने पर भी छोड़कर वन में तपस्या के लिए चले गये। वे पुत्री से अत्यन्त प्रेम करते थे तभी पुत्री द्वारा आकाश मार्ग में चलने की विद्या सीखने की जिद्द पर उसे सिखाया।

इसी प्रकार एकत द्वित और त्रित तीनों वेद वेदांगों में प्रवीर्ण थे। उन्होंने वेद वेदांगों की उत्कृष्ट शिक्षा ली। इन तीनो में एकत् द्वित दोनों अत्यन्त धूर्त एवं लोभी प्रवृत्ति के थे। अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण ही त्रित को कूयें में छोड़कर चले गये क्योंकि उसे हिस्सा देना पड़ता। त्रित अत्यन्त सरल सौम्य व्यक्ति था तभी कूयें से किसी तरह से निकलकर जाते समय मार्ग में एक ब्राह्मण से अपने भाईयों के विषय में पूछा तो उसके द्वारा भाईयों को बुरा कहने पर क्रोधित होता है तथा पैरों के निशान का अनुसरण करके उन्हें खोजता है।[1]

इसी प्रकार सागरदत्त और बुद्धवर्मा दोनों ही समुद्री यात्रा के समय मार्ग में परम मित्र बन गये इनकी मित्रता इतनी घनिष्ठ हो गयी कि अपने अजन्में पुत्र एवं पुत्री का विवाह करने का निश्चय कर दिया। दोनों अत्यन्त सरल और सौम्य व्यक्ति थे।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह एकोनविंशति सर्गः

इसी प्रकार स्त्री पात्रों में रानी पद्मावती और वासवदत्ता दोनों ही राजा उदयन की परम प्रिय महारानी थी। अत्यन्त सुन्दर और सुशील रानियां थी।

इसी प्रकार मदनमंजुका राजकुमार नरवाहनदत्त की रानी थी। राजकुमार को अत्यन्त प्रिय थी। अत्यन्त सुन्दर और सुशील नायिका थी राजकुमार के प्रेम में इतना विह्वल थी, कि गले में फन्दा डालकर आत्म हत्या का प्रयत्न करने लगी।[1]

इसी प्रकार उत्पल–हस्तक पुत्री सुरसमंजरी अत्यन्त सुन्दर थी तभी राजकुमार नरवाहनदत्त शिकार खेलने गये तो जंगल में उसे झूला झूलते गाते हुए सुना तभी से उसमें आसक्त हो गये थे। रानी मृगयावती ने शीघ्र ही सुरसमंजरी का विवाह राजकुमार नरवाहनदत्त से कर दिया। रानी सुरसमंजरी अत्यन्त सुन्दर, सुशील एवं अपने पिता की प्रिय थी।

इसी प्रकार रानी अंगारवती अवन्ति देश के राजा विद्याधर की महारानी थी। रानी अंगारवती अत्यन्त उदार हृदय वाली रानी थी अपने प्रपौत्र अवन्तिवर्धन को बहुत मानती थी तभी उन्हें सुस्त देखकर अत्यन्त चिन्तित हो जाती हैं और सुरसमंजरी में आसक्त जानकर अत्यन्त चिन्तित हो जाती है और तुरन्त ही उत्पल–हस्तक से निवेदन कर विवाह करा देती हैं।

इसी प्रकार रानी मृगयावती राजा उदयन की माता थी। मृगयावती राजा उदयन की प्रिय माता थी, अपनी पुत्रवधू पद्मावती और वासवदत्ता को

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह दशम सर्गः

बहुत मानती थी, तभी एक बार रानी पद्मावती की गर्भावस्था के दौरान कोई इच्छा पूर्ण की। रानी मृगयावती अत्यन्त उदार हृदय वाली रानी थी।

इसी प्रकार गौण पात्रों में मनोरमा जो मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री थी अत्यन्त सुन्दर थी तभी द्रुमिल नामक राक्षस वेश बदलकर विवाह कर लेता है। राजकुमारी मनोरमा अत्यन्त सुन्दर एवं सुशील राजकुमारी थी। इसी प्रकार रत्नावली राजा विद्याधर के सेवक विश्विल की पुत्री थी तथा पुंक्वस्क उसका पति था। पुंक्वस्क बाहर रहता था, उसके वियोग में इतनी दुर्बल हो गयी कि हाथ से कंगन स्वयं बाहर गिरने लगा।

इसी प्रकार गंधर्वदत्ता वीणादत्तक की पुत्री थी। गन्धर्वदत्ता संगीत गायन में और वीणावादन में अत्यन्त प्रवीण थी तथा अत्यन्त सुन्दर थी। वीणादत्तक पुत्री गन्धर्वदत्ता यह प्रतिज्ञा की थी जो भी वीणावादन में मुझे हरा देगा उसी से मेरा विवाह होगा।[1]

इसी प्रकार सावित्री अष्टावक्र ऋषि की पुत्री थी, अत्यन्त सुन्दर एवं सौम्य थी। इसी प्रकार अमृता अष्टावक्र के भाई वृष ऋषि की पुत्री थी अत्यन्त क्रोधी थी। उसका विवाह अंगीरस ऋषि से हुआ था। सदैव उन पर शक करती थी इसी कारण एक बार आत्म हत्या करने लगी।

इसी प्रकार सुयामुनदत्ता गन्धर्वदत्ता की तरह नृत्य विद्या में प्रवीणं थी। नृत्य में तो उसे उर्वशी रम्भा आदि इन्द्र की अप्सरायें भी नही हरा सकती थी। प्रतियोगिता होने पर सभी उसकी प्रशंसा करते हैं।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह अष्टादश सर्गः

इस प्रकार इस बृहत्कथा श्लोक संग्रह नामक महाकाव्य में राजा नरवाहनदत्त का चरित्र चित्रण अत्यन्त विशद एवं स्पष्ट है। इस महाकाव्य से अनेक उपकथायें जुड़ी हुई हैं। इन उपकथाओं के पात्रों का चरित्र निर्माण स्पष्ट एवं निर्मल है। बुधस्वामी के इस रचना के प्रत्येक अंश में स्वाभाविकता का रंग है।

इस विवेच्य कृति के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ण्यमान स्थानों का लेखक ने स्वयं देखा था। ग्रन्थमूल का नैतिक कष्ट स्वर इस ग्रन्थ में उदान्त था।[1]

आचार्य रामचन्द्र मिश्र के अनुसार इस ग्रन्थ के पात्रों का चरित्र स्पष्ट अर्थात स्फुट चरित्र ! प्रसिद्ध है।[2]

---

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पेज नं0 200, 1947
   डा0 हंसराज अग्रवाल

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पेज नं0 169
   आचार्य रामचन्द्र मिश्र

अष्टम अध्याय

सामाजिक दृष्टिकोण

सामाजिक चित्रण

वत्स देश के राजा विद्याधर थे, उनके राज्य में सभी सुखी एवं सम्पन्न थे। राजा स्वयं प्रत्येक प्राणी के हितों का सदैव ध्यान रखता था, इसके लिए वह स्वयं रात्रि में वेश बदल कर प्रजा के सुख दुःख का पता लगाता था और उनके कष्टों को दूर करता था। अवन्ति और वत्स देश में प्रजा के मनोरंजनार्थ समय-समय पर महोत्सवों का आयोजन किया जाता था जिनमें मृगजिना महोत्सव, और जलमहोत्सव अत्यधिक प्रसिद्ध था। इन महोत्सवों के आयोजन में राजा स्वयं भी हिस्सा लेता था। प्रजा भी अपने राज्य में आयोजित इन महोत्सवों में पूर्ण उत्साह से हिस्सा लेते थे। इन महोत्सवों के आयोजन का प्रमुख कारण राजा की अपनी व्यक्तिगत प्रसन्नता थी।

मृगजिना महोत्सव :

वत्स देश में इस महोत्सव का आयोजन बड़े धूम-धाम से किया जाता था। मृगजिना महोत्सव के आयोजन का प्रमुख कारण अपने बिछड़े हुए पत्नी व पुत्र प्राप्ति का हर्ष राजा को अपने पुत्र और पत्नी को ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में थे। राजा विद्याधर के पुत्र उदयन थे जिसका पालन पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा भगवान राम पुत्र लव-कुश की ही तरह ऋषि वशिष्ठ के आश्रम में हुआ था। राजा विद्याधर को अपने युवा पुत्र एवं पत्नी की पुर्नप्राप्ति महल के रमणीय उद्यान में हुई थी। उस रमणीय उद्यान में दोनों ऋषि कुमार जो वशिष्ठ ऋषि द्वारा कुमार उदयन और रानी मृगयावती को चौदह वर्ष पश्चात राजा विद्याधर के पास पहुंचाने आये थे राजा द्वारा आतिथ्य सत्कार के लिए अत्यन्त आग्रह किए जाने पर गुरू वशिष्ठ द्वारा आदेशित न होने के कारण आथित्य सत्कार के लिए इइं.कार कर दिया। राजा विद्याधर ने मृगजिना नामक

वस्त्र जो ऋषिकुमारो ने धारण कर रखा था देने का आग्रह किया। ऋषिकुमारों दिए जाने पर राजा उस मृगजिना नामक वस्त्र को उस उद्यान में स्थापित कर पूजा-अर्चना की और तभी से उस उद्यान का नाम 'मृगजिना उद्यान' रखा दिया। तब से लेकर आज तक प्रत्येक वर्ष वसन्त मास ईसवी 'मृगजिना नामक उद्यान' में ही इसे महोत्सव के रूप में मनाया जाता था। इस महोत्सव में पूर्व महापुरूषों तथा अपने वंश के पूर्वज राजाओं के जीवन में हुई महत्त्वपूर्ण घटनाओं को चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। इस महोत्सव में महान राजा राम और कृष्ण के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन चित्र के माध्यम से किया जाता था। इस प्रकार एक विशाल चित्रशाला का आयोजन किया जाता था, जिसमें राजा सगर और उनके दस हजार पुत्रों को, राजा दशरथ के पुत्र राम, लक्ष्मण और सीता आदि तथा राजा पाण्डु और उनके युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डवों आदि के चित्र इस महोत्सव के अवसर पर चित्रशाला में लगाये जाते थे। इस महोत्सव में विभिन्न प्रकार से जनता के मनोरंजनार्थ विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। राजा इन सभी कार्यक्रमों में हिस्सा लेते थे। प्रजा की इन सभी कार्यक्रमों से भरपूर मनोरंजन करती थी।

जल महोत्सव :

इस महोत्सव का आयोजन अवन्ति देश में शरतकाल में किया जाता था। 'जल महोत्सव' को 'नागवन यात्रा महोत्सव' भी कहा जाता था। इस महोत्सव में अन्य देश के अधिकतर युवक-युवतियां मनोरंजनार्थ सुसज्जित होकर सुसज्जित रथों द्वारा जाते थे। राजकुमार, राजकुमारियां और अन्य देशों के युवक-युवतियां आदि सभी इस महोत्सव का भरपूर आनन्द लेते थे। इस महोत्सव में सभी उत्साहपूर्वक हिस्सा लेते थे। आजकल के मेलों की तरह

ही एक स्थान विशेष पर आयोजन किया जाता था विभिन्न प्रकार दुकानें लगायी जाती, एक विशाल यात्री गृह बनवाया जाता था जिसमें जनता मनोरंजनार्थ कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता था। नगर के मुख्य द्वार पर एक विशाल तोरण द्वार बनवाया जाता था। सभी लोग इसी द्वार से ही जाते थे।

शिल्प-ज्ञान

आकाश यन्त्र :

8वीं शती में सम्भवत: तीन तरह के यान राजाओं द्वारा आवागमनार्थ प्रयोग किए जाते थे। 1. जल यन्त्र 2. पत्थर यन्त्र 3. धूल यन्त्र के विषय में सभी जानते थे। आकाश यन्त्र नामक यान से पूर्णत: अनभिज्ञ थे। 1. धूल यन्त्र, पत्थर यन्त्र, जल यन्त्र विशेष कुशल कारीगरों द्वारा ही बनाया जाता था। इसको बनाने वाले कारीगर बहुत कम थे।

आकाश यन्त्र नाम यान से कोई भी परिचित नहीं था फिर भी राजा विद्याधर ने मन्त्री यौगन्धरायण को आदेश दिया कि वह आकाशीय यान कुशल कारीगर जो इस यान को बनाना जानता हो उससे बनवाये। मन्त्री यौगन्धरायण दूर-दूर से अच्छे कारीगरों को बुलवाया और आदेश दिया कि आकाशीय यान को बनाये अन्यथा मौत के घाट उतार दिए जायेगें परन्तु सभी कारीगर इस आकाशीय यान से अनभिज्ञ बताया उन्होंने कहा - हमने ऐसा यान देखा तक नहीं है सम्भवत: ग्रीक लोग जानते हों। आकाश यन्त्र सम्भवत: ग्रीक के लोग बनाना जानते थे। अन्य किसी के लिए यह कल्पना मात्र था। ग्रीक वासियों से किसी कुशल कारीगर की विशेष कृपा से ही पुंक्वस्क नाम के ब्राह्मण का विश्विल नामक दामाद ही जानता था यह अत्यन्त गोपनीय विद्या थी। उसे एक ग्रीक शिल्पी ने प्रसन्न होकर सिखायी थी।[1]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्ग: - 26।

एक बार राजा विद्याधर द्वारा अत्यन्त कठोरता पूर्वक आदेशित किए जाने पर विश्विल ने सब सामान मांगा और अत्यन्त कुशलता पूर्वक आकाश यन्त्र बनाया। पूर्ण रूप से तैयार होने पर यह गरूड़ पक्षी के आकार का था उसे छोटी सी जगह पर खड़ा कर दिया और मंदार पुष्प की मंजरियों से सजाया। इसके पश्चात राजा से जहां चाहे वहां जाने को कहा।[1]

यह आकाश यन्त्र नामक यान सम्भवतः मुर्गे के आकार का भी होता था अतः इसे 'यन्त्रकक्कुट' भी कहा जाता था और कभी गरूड़ पक्षी के आकार का भी कुछ शिल्पी बनाते थे। यह गरूड़ पक्षी की तरह आकाश मार्ग से चलता था। इस यान द्वारा आजकल के हवाई जहाज की तरह आकाश मार्ग से कहीं भी जाया जा सकता था। अन्य सभी वत्स अवन्ति राज्यों के लिए ये विस्मय सूचक था।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्ग - 279, 281

चिकित्सा-व्यवस्था :

विद्याधर के राज्य में उचित चिकित्सा व्यवस्था होती थी। रानी पद्मावती के गर्भावस्था के दौरान, पीतज्वर की आशंका से अच्छे वैद्य को बुलवाकर परीक्षण करवाती थी। उसी प्रकार आमाशय की पीड़ा के उपचार के लिए उबले हुए अदरक का चूर्ण सुखाकर, उसका घोल बनाकर सागरदत्त को पिलाया तो शीघ्र ही उसकी उदर-पीड़ा शान्त हो गयी। जिससे शीघ्र ही वह स्वस्थ हो गया।[1]

इसी प्रकार पुंक्वस्क ने चिकित्सा शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक् संहिता में कहे गये महत्त्वपूर्ण वृक्ष लिंब वृक्ष से छाल और पत्तियां लेकर आपुवंर्धक और अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक दवा बनायी। इन दवाओं को हजारों मूल्यों में बेचा और अपने श्वसुर पुंक्वस्क से भी लेने को कहा। उन्होने इसे प्रसन्नता पूर्वक ले लिया।

इसी प्रकार राजा नरवाहनदत्त ने आयुर्वेद शास्त्र में मंच औषधि का कवच हमेशा साथ होना चाहिए। शरीर के बाध्य सारांश - शल्यकरण की क्रिया से मुक्त है। यह 'मंचऔषधि' मांसवर्धिनी है जो घायल स्थान पर लगाने से बिना शल्यक्रिया के ही घावों को भरने वाली होती है। जो वर्ण प्रसादनी है जिसकी सहायता से स्वच्छ एवं साफ त्वचा बढ़ती है। एक पांचवी परम औषधि है, जो सभी औषधियों में सबसे अच्छी है यह मृत्यु से पुर्नजीवित कराने वाली होती है। इन मंचऔषधियों का प्रयोग करके लौह पंजों से घायल कौशिक मुनि अमृतगति का उपचार किया जिससे वह पुर्नजीवित होकर स्वस्थ हो गया।[2]

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्गः - 225, 226
2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - नवम् सर्गः

मदिरालय वर्णन :

राजा के महल में एक विशाल मदिरालय कक्ष होता था। जिसमें एक मदिराध्यक्ष भी होता था वह मदिरालय व्यवस्था देखता था, मदिरालय में आने वालों का विशेष ध्यान रखता था। मदिरालय में तरह-तरह के मदिरा की व्यवस्था होती थी। मदिरालय कक्ष में स्त्रियां नृत्य करते हुए मदिरापान कराती थीं। राजा नरवाहनदत्त जब मदिरालय कक्ष जाते हैं और मदिराध्यक्ष को मदिरा लाने का आदेश देते हैं तब पद्मावती और वासवन्दता दोनों रानियां अपने हाथों द्वारा एक थाल में मदिरा थाल में सजाकर मदिराध्यक्ष के हाथों द्वारा राजा के पास भेजती हैं। मदिरालय में तब तक लोग तब तक मदिरापान करते थे जब तक कि मदिरापान करके पूर्ण रूप से तृप्त होकर हिचकियां न ले लें।[1]

इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट होता है कि राजा में अत्यन्त सामाजिक व्यवस्था उत्कृष्ट थी। समाज अत्यन्त सुखी एवं समृद्ध था।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - द्वादशः सर्गः - 33, 34, 35, 36

संस्कार व्यवस्था

'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते'[1] अर्थात् पहले से ही विद्यमान दुर्गुणों को हटाकर उनके स्थान पर सद्गुणों का आधान करना ही संस्कार है। इसी प्रकार तन्त्रवार्तिककार ने योग्यता आधान को ही संस्कार माना है - योग्यतांचादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यनते।[2]

संस्कार व्यवस्था में समन्वयवादी विचार का दर्शन होता है क्योंकि इसमें माता-पिता द्वारा प्राप्त संस्कारों की प्रबलता में सन्देह नहीं किया जाता, फिर भी समुचित पर्यावरण के द्वारा नवीन संस्कारों को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार वैदिक संस्कारों का आयोजन पूर्णतः समाजशास्त्रीय चिन्तन पर आधारित है और इस व्यवस्था का डिमाडिम घोष है कि सर्वथा अभिनव मानव का निर्माण तो नहीं किया जा सकता है किन्तु मानव का नव-निर्माण अवश्य किया जाता है। संस्कार योजना व्यक्ति परक होती हुई भी प्रमुख रूप से स्थायी एवं सुदृढ़ समाज की आधारशिला है।

संस्कारों का सविस्तार प्रतिपादन गृह्य सूत्रों तथा स्मृति ग्रन्थों में हुआ है। उपलब्ध साहित्य में संस्कारों की संख्या 10 से 40 तक देखी जा सकती है। हिरण्यकेशि तथा कौशिक गृहासूत्रों में सस्कारों की संख्या 10 मानी गयी है, खादि एवं जैमिनी सूत्र में 11, कौषितकि (शांख्यायन) आपस्तम्ब और गोमिल गृहासूत्र में 12, आश्वलायन तथा मानवसूत्रों में 13, पारस्कर, गृह्यसूत्र एवं मनुस्मृति 14 संस्कार बनाये गये हैं। आचार्य गौतम ने इनकी संख्या 40

---

1. चरक संहिता
2. तन्त्रवार्तिक - पृष्ठ सं0 1078

कर दी है तो वैखानस ऋषि ने 18 संस्कार बताये है। संख्या सम्बन्धी मतैक्य न दिखायी देने पर भी प्राय: सभी धर्मशास्त्रों ने संस्कारों की संख्या 16 मानते हैं - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोपयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णविध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास तथा अन्त्येष्टि।

सभी संस्कार किसी शुभ मुहूर्त में देवताओं के स्तुतिपरक् वेदमन्त्रों के साथ सम्पादित किए जाते रहे हैं। संस्कार का विवेचन भी हमारे विवेच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' में कतिपय स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। विशेष रूप से गर्भाधान संस्कार, जातकर्म, नामकरण संस्कार का विधिपूर्वक विवेचन है।

यथा - सन्तानोत्पत्ति के अनन्तर जो कर्म किए जाते हैं उन्हें जातकर्म संस्कार कहा जाता है। इनके साथ-साथ शिशु पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने का प्रयास भी किया जाता है। फलत: इसे संस्कार की श्रेणी में रखा गया है। शिशु का जन्मकाल ही इस संस्कार का समय है।[1]

---

1. शिशु के जन्म का समय पूर्णतया निश्चित नहीं किया जा सकता। सामान्यतया नौ मास पश्चात ही जन्म होता है -

नवमदशमैकादशद्वादशंनामव्यतमस्मिन जापते, अतोड.यथा
विकारी भवति ।।

जातकर्म संस्कार जन्म के बारहवें दिन भी किया जाता है यथा विद्याधर पुत्र नरवाहनदत्त के जन्म के उपरान्त पूरे राज्य हर्ष मनाया गया और जन्म के बारहवें दिन विधि पूर्वक जातकर्म संस्कार किया गया। मन्त्रियों ने भी अपने-अपने पुत्र के जातकर्म संस्कार से निवृत्त होकर अपने-अपने पुत्रों का नाम रखा।[1]

नामकरण संस्कार :

इसी प्रकार नामकरण संस्कार के सम्बन्ध में कहा गया है कि किसी वस्तु का ज्ञान नाम के बिना नहीं होता संसार का सारा व्यवहार नाम के आधार पर ही चलता है। इस प्रकार नामकरण एक आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य प्रक्रिया है तथापि इसे संस्कार रूप में देने का कारण यह है कि जिन-जिन आकांक्षाओं और उमंगों को लेकर दम्पत्ति अपनी सन्तान को उच्च बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे, उसी के अनुरूप शिशु को नाम दें। नामकरण संस्कार के लिए मनुस्मृति के भाष्यकार शिशु के जन्म के ग्यारहवें दिन, का समय उपयुक्त बताते हैं।[2]

याज्ञवलय स्मृति 1.12 में यही समय निर्दिष्ट है - अहन्येकादशेनाम। मनुस्मृति में जन्म के 10वें व 12वें दिन का समय निर्दिष्ट है।[3] इसी नियम

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - षष्ठ सर्गः श्लोक सं0 6

   जातकर्मणि निर्वन्ते प्राप्ते च द्वादशेऽहनि ।
   अन्वर्थनाम्नस्त्वतनयानकुर्वन्नराजमन्त्रिणः ।। 6।।

2. विश्व रूप / मनुस्मृति 2.30

3. नामधेयं दशम्यां तुद्वादश्यां वास्यकारयेत।
   पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ।।

का पालन करते हुए सूर्यवंश के गुरू वशिष्ठ ऋषि ने भी जातकर्म के पश्चात जन्म बारहवें दिन मृगयावती के पुत्र का 'उदयन' यह नामकरण किया।[1]

अन्नप्राशन संस्कार :

इसी प्रकार अन्नप्राशन संस्कार के सम्बन्ध में भी कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है - अन्नप्राशन का अर्थ है - जीवन में प्रथम बार अन्न का अशन अर्थात् भोजन कराना।[2] अन्नप्राशन संस्कार का समय जन्म का छठां महीना माना गया है जबकि शिशु के दांत निकल चुके हों।[3].

इस संस्कार में शिशु को दही, शहद तथा घी मिश्रित अन्न खिलाया जाता था -

दधिमधुघृतमिश्रितमन्नंप्राशयेत् ।।[4]

उबले चावल आदि खिलाकर राजकुमार उदयन का अन्नप्राशन संस्कार वशिष्ठ ऋषि द्वारा विधिपूर्वक किया गया।

---

1. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - पंचम सर्गः, श्लोक सं0 107

   जातकर्म ततः कृत्वा सूर्यवंशगुरू स्वयम् ।

   दिवसे द्वादशे नाम पुत्रस्य कृतवान्मम् ।। 107 ।।

2. बालस्य यत्प्रथम भोजनं तदुच्यते प्रशित्रम ।।

   (शब्दानुशासन महाभाष्य) 6.4.25

3. षष्ठे मासि अन्नप्रशानम् । गृह सूत्र

   षष्ठेऽन्न प्राशनंमासि यद्वेष्टं कुले ।। मनुस्मृति 2.34 ।।

4. आश्वलायन गृहसूत्र - 1.16.5

विवाह संस्कार

विवाह शब्द का अर्थ है - कन्या (वधू) को उसके पितृगृह से विशेष रूप अथवा प्रयोजन विशेष (पत्नी बनाने) के लिए ले जाना। उद्वाह परिवय, उपयम, पाणिग्रहण, प्रभृति इसके अपर पर्याय हैं। समावर्तन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को वंश परम्परा अक्षुण्ण रखने का विशेष रूप से निर्देश होता था - प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ।। इसलिए महाभाष्यकार पतंजलि ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि जो स्नातक विवाह नहीं करता वह निन्दा का पात्र है।[1]

मनु के विचार से विवाह का उद्देश्य है - सन्तान प्राप्ति शास्त्रोक्त धर्मो का पालन।[2] हिन्दू समाज में कोई भी धार्मिक कृत्य स्त्री के बिना पूरा नहीं होता, केवल पुरुष अधूरा माना जाता है।[3] विवाह एक धार्मिक संस्कार है ठेका नहीं इसलिए इसमें वर-कन्या का चयन बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठता है। हमारा समाज पुरूष प्रधान भले हो, कन्या के गुण-दोषों का विचार अधिक मुखर भले प्रतीत हो परन्तु शास्त्रों में वर-कन्या दोनों के गुण-दोष विचार का निर्देश है।[4]

---

1. अधीतःस्नात्वा गुरूभिरनुज्ञातेय खट्वा रोढव्या। या इदानीमतोन्यथा करोति स उच्यते खट्वासोढोऽयं जाल्मः । महाभाष्य 2.1.26
2. अपत्नीको नरोभूप कर्मयोग्यो न जायते ।
   ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृपः।
3. त्रिवर्षोद्वहेत कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षकीम् ।
   त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः।। मनुस्मृति 6.64
4. वर-परीक्षा के लिए द्रष्टव्य - मनु. 6.88
   वधूपरीक्षा के लिए द्रष्टव्य है - मनु. 3.8.10 मिताक्षरा 1.51

विवाह के प्रकार हिन्दू धर्म शास्त्रों में विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख मिलता है - ब्राह्य, दैव, आर्य प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच।

इनमें से ब्राह्य विवाह सर्वोत्तम विवाह माना गया है। इसमें पिता कुलीन एवं सच्चरित्र वर को अपने घर स्वयं आमन्त्रित करता था तथा उसका स्वागत सत्कार कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कन्या को प्रदान करता है।[1]

यह विवाह स्वेच्छया अथवा बिना किसी दबाव के सम्पन्न होता है। विवाह का यह प्रकार समाज की विकसित अवस्था का द्योतक है क्योंकि इमसें कन्या का अपहरण तथा शक्ति का अनुचित प्रयोग आदि दुष्प्रवृत्तियों के लिए कोई स्थान नहीं था। ऋग्वेद में वर्णित सोम और सूर्या का विवाह इसी कोटि में आता है। इस महाकाव्य में भी ब्राह्म विवाह का प्रचलन था। कुमार नरवाहनदत्त सुरसमंजरी में आसक्त होते हुए भी ब्राह्म विवाह नियम द्वारा पाणिग्रहण संस्कार किया गया।[1]

आश्रम व्यवस्था

आज संसार का प्रारम्भ 'भोग' है और अन्त 'त्याग' है। इस व्यवहारिक सार्वभौमिक सत्य को ध्यान में रखकर प्राच्य मनीषियों ने मनुष्य जीवन के चार लक्ष्य (पुरूषार्थ) निर्धारित किए - धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष।

---

1. आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
   आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ।।

(मनुस्मृति : 3.27)

इन चतुः पुरूषार्थों का सम्यक् सेवन किस प्रकार सम्भव है? - इस समस्या का समाधान आश्रम व्यवस्था के रूप में है।

आङ्. पूर्वक श्रम धातु में घञ प्रत्यय के, प्रयोग से निष्पन्न 'आश्रम' शब्द का अर्थ, है - जिसमें श्रम ही श्रम है, जिसमें आलस्य का स्थान नहीं है। इसमें हर क्षण कर्म मे निरत रहते हुए ही सौ वर्ष जीने की अभिलाषा सार्थक कही जा सकती है -

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।।[1]

इसलिए मनुष्य की सामान्य आयु सौ वर्ष स्वीकार करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरूषार्थो का सम्यक् उपभोग हेतु जीवन को 25-25 वर्षो के चार बराबर भागों में विभक्त किया गया - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास।[2] इस प्रकार आश्रम एक तरह से कर्ममय जीवन यात्रा के चार पडाव हैं, चार विश्राम स्थल हैं जहां प्रत्येक व्यक्ति रूक-रूक कर निश्चित कार्य करके ही आगे बढ़ता है।[3]

समाज शास्त्रीय अध्ययन करके प्रत्येक आश्रम के लिए मूलभूत कर्तव्यों का निर्धारण किया है जिनके पालन से व्यक्ति की लौकिक एवं पारलौकिक

---

1. यजुर्वेद 40.2
2. ककामसूत्र 1, 2.1-6
   ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
   एते ग्रहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथवाश्रमः ।। मनु. 6.87
3. The word therefore signifies a halt, a stoppage or a stage in the Journey of Life just for the sake of rest in a sense in order to prepare one self for further journey. Prabhu Hindu Social Organisation, pp. 83.

एषणाओं की पूर्ति होती है।[1]

इन चारों - ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों में से आश्रम व्यवस्था की दृष्टि से विवेच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' विचारणीय है।

आश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थ शब्द का अर्थ है - वन की ओर प्रस्थान/मनु के अनुसार जब गृहस्थ के सिर पर बाल पकने लगे हों, शरीर पर झुर्रियां पड़ने लगें तथा उसके पौत्र हो जायें तब उसे वानप्रस्थ होकर अरण्य का आश्रय लेना चाहिए।[1] उसे ग्राम्याहार (गृहस्थाश्रम में ग्राम सुलभ भोज्य पदार्थो तथा परिच्छद (भौतिक सम्पत्ति) आदि त्याग कर अर्थात पुत्र पर कुटुम्ब भार समर्पित करके पत्नी को पुत्र को सौंपकर अकेले अथवा पत्नी सहित अरण्यवास करना चाहिए।[3] वानप्रस्थ आश्रम का एक निश्चित समय गृहस्थाश्रम के बाद लगभग 50 वर्ष की अवस्था होने पर उसमें करने का निर्देश दिया है। वानप्रस्थ आश्रम के कुछ उदाहरण भी इस विवेच्य कृति में परिलक्षित होता है यथा - इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में राजा महासेना भी वानप्रस्थ आश्रम में जाने का दृढ़ संकल्प मंत्रियों और परिजनों को बजाया। दोनों मंत्रियों के चले जाने पर राजा महासेना अपना सर मुंडवाकर वल्कलवस्त्र धारणकर हाथ में तीर्थ स्थलों के जल से परिपूर्ण कमण्डल लेकर एक पूर्ण

---

1. वर्णानामाश्रमाणां च धर्मन्धर्मभृतां वर ।
   लोकाश्च सर्ववणानां सम्यग्धर्मानुपालिनाम ।।
2. गृहस्थस्तु यक्ष पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
   अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ।। मनुस्मृति 6.2
3. सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
   पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैवा ।। (वही 6.3)

सन्यासी वेश धारण कर अपने महल से बाहर निकला। महारानी उनके इस सन्यासी रूप को देखकर अत्यनत विषाद ग्रस्त होकर अपना वक्षस्थल पीट कर विलाप करने लगीं।[1]

वानप्रस्थ संस्कार :

एक अन्य स्थान पर राजा वेगवान अपने राज्य, पत्नी, मित्र पुत्र और सम्पूर्ण परिवार और घर को तृण के समान मानकर अपनी प्रकृति को सत्य, रज और तम के कलंक से दूर करके तपोवन तपस्या के लिए चले गये।[2] राजा वेगवान की पुत्री ने जब यह पूछा कि यदि आप तपोवन तपस्या के लिए चले गये तो मुझे लडडू कौन देगा? राजा ने प्यार से तुम्हारा भाई मानसवेग आज के बाद तुम्हारी सारी इच्छाओं की पूर्ति करेगा। राजा वेगवान पुत्री का मोह त्याग कर तपोवन तपस्या के लिए गये।[3]

---

1. तपोस्तु गतयोः केशान्वापयित्वा सवल्कलः ।
   कमण्डलुसनाथश्च भूपालो निर्ययौ गृहात् ।। 64 ।।
   विषाद विप्लुताक्षेण वक्षोनिक्षिप्त पाणिना ।
   दृश्यमानोऽवरोधेन विवेशास्थानमण्डपम् ।। 65।।

   बृहत्कथा श्लोक संग्रह प्रथम सर्ग 66/65

2. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - चतुर्दश सर्गः
   इति राज्य कलत्रमित्रपुत्रान्
   गृहधानं च तृणाय मन्यमानः।
   गुरूसत्त्वरजस्तमः कलंगा,
   प्रकृतिं हातुमगाद्वनं नरेन्द्रः ।। 28 ।।

3. बृहत्कथा श्लोक संग्रह - चतुर्दश सर्गः
   तात त्वपि वनं याते को मे दास्यामि मोदकान् ।
कल्पवृक्ष प्रसूतानि फलानि कुसुमानि वा ।। 26।।

इस प्रकार इस महाकाव्य के गहन अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में सभी कार्म विधि विधान से किये जाते थे। नामकरण आदि संस्कार वेद विहित विधि विधान से किये जाते थे।

नवम् अध्याय

प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण

मानव संस्कृति और सभ्यता का स्वरूप बहुत कुछ मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध पर निर्भर करता है। ये सम्बन्ध यद्यपि निरन्तर परिवर्तन-शील हुआ करते हैं, किन्तु आधुनिक युग में द्रुत वैज्ञानिक विकास के कारण इनमें आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है। पूर्व युगों का मनुष्य यदि स्वयं को प्रकृति का अंश समझता था, तो आज वह प्रकृति-विजेता होने के दम्भ से ग्रस्त है।

मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध आज विजेता और विजित का, किंवा भोक्ता एवं भोग्या का हो चला है और इसीलिए प्रकृति का निरन्तर शोषण हो रहा है। प्रकृति पर विजय पाने का गर्व मानव के चरण चन्द्रमा पर पड़ चुके हैं एवं बृहस्पति तथा शनि पर पहुंचने के लिए निरन्तर अन्तरिक्ष यान भेजे जा रहे हैं। चन्द्रमा पर उपनिवेश बनाने की बात की जा रही है और समुद्र-तल में मार्ग बनाये जा रहे हैं। पहाड़ डाइनेमाइट से उड़ाये जा रहे हैं, वनों को काट फेंका गया है और अमृत-वाहिनी पुण्य सलिला नदियां विषैली हो गयी हैं। पर्यावरण में भयंकर असन्तुलन उत्पन्न हो गया है, फलस्वरूप सामरस्य की प्रतिमूर्ति प्रकृति भी असन्तुलन के रूप में बदला लेने लगी है। भूमिक्षरण अतिवृष्टि अनावृष्टि, मेघ स्फोट आदि अनेक दैवी आपत्तियां नित्य-प्रति धन-जन की हानि कर रही हैं। जीवन की स्थिति के लिए जिस प्रकृति पर मानव निर्भर था, स्वार्थवश मानव उसी को नष्ट करता जा रहा है। अब जब मानव जगा है, तब तक बहुत देर हो चुकी है। पर्यावरण निरन्तर प्रदूषित होता जा रहा है। मनुष्य को अब इसकी चिन्ता होने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण की रोकथाम के लिए प्रयत्नकिए जा रहे हैं, भारतवर्ष में भी वन-संरक्षण एवं गंगा जल के निर्मलीकरण के लिए अनेक योजनायें बन चुकी हैं, फिर भी विचारणीय तो यह है कि यह चिन्ता भी केवल इस भावना से की जा रही है कि प्रकृति कहीं इस हद तक दूषित न हो जाये कि मानव का अस्तित्व एवं भविष्य संकट में न पड़ जाये अतएव स्पष्ट है कि वर्तमान युग में मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध उपयोगितावाद की संकीर्णताओं में सीमित है। परिणाम स्वरूप साहित्य में प्रकृति के रमणीय एवं प्रेरक चिन्ह दुर्लभ होते जा रहे हैं। इस दुःखद सन्दर्भ में विश्वविख्यात कवियों के प्रकृति-चित्रण की महत्ता साहित्येतिहास एवं साहित्यालोचन के क्षेत्र

तक ही सीमित नहीं है, अपितु मनुष्य और प्रकृति के स्वस्थ सम्बन्धों के विकास के निमित्त भी असंदिग्ध है। इस दृष्टि से प्रकृति के विराट एवं क्षुद्रतम अंगों को एक जैसा महत्त्व प्रदान करने वाले कालिदास सदृश कवि का अध्ययन इस समझ को बढ़ावा देता है कि धरती पर मानव-भविष्य की उज्ज्वलता मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य और निर्भर हो सकती है, मनुष्य द्वारा प्रकृति के शोषण पर नहीं ।

प्रकृति मानव की सहचरी है। जीवन पर्यन्त प्रकृति के सामीप्य के कारण मनुष्य का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। प्रकृति और साहित्य के सम्बन्ध का विवेचन वस्तुतः प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्ध का परीक्षण है, क्योंकि मनुष्य की आत्माभिव्यक्ति की आकुलता ही साहित्य सर्जना का मूल है। अपने चारों ओर के वातावरण का जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है उसे दूसरों से कहने की प्रवृत्ति मनुष्य के लिए अत्यन्त स्वाभाविक है। स्थूल जगत की मनुष्य के सूक्ष्म-जगत पर होने वाली प्रतिक्रिया की सरस और सुन्दर अभिव्यंजना ही काव्य कहलाती है। यह स्थूल जगत् केवल मनुष्यमय ही नहीं है। मानवेतर भी बहुत कुछ है जिसे सहज बोध के आधार पर हम प्रकृति संज्ञा प्रदान करते हैं। यह प्रकृति अपने नाना रूपात्मक विराट प्रसार को लेकर मनुष्य के हृदय पर अनेक संस्कार डाला करती है और मनुष्य की रागात्मक भावना उनसे घुल मिलकर उन्हें साहित्य के रूप में असाधारण बना देती है। अतः साहित्य जहाँ मानव की अन्तः प्रवृत्तियों का उद्घाटन करता है, वहां प्रकृति के नाना रूपों के साथ मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों की भी व्याख्या करता है।

मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध भी उतना ही पुराना है जितना कि सृष्टि के उद्भाव का। अनेक दार्शनिकों, धर्मवेत्ताओं एवं विज्ञानवेत्ताओं ने अनेक प्रकार से प्रकृति की व्याख्या करने की चेष्टा की है। 'प्रकृति' का अर्थ है स्वभाव और जो कुछ स्वाभाविक है, मनुष्य द्वारा नहीं बनाया गया है, प्रकृति शब्द में समाविष्ट है। मनुष्य के लिए प्रकृति शब्द का आशय उस विस्तृत मानवेतर जगत से है, जिसके साथ उसका सम्बन्ध अनादि काल से अक्षुण्ण चला आ रहा

है। प्रकृति के ही परिवेश में मनुष्य जन्म ग्रहण करता है, विकास के पथ पर चलता हुआ जीवन व्यतीत करता है और अनेक संस्कार ग्रहण करता है। विज्ञान और दर्शन दोनों इस सत्य के समर्थक है कि प्रकृति के सान्निध्य में रहकर और उसी के योग से मानव जीवनोत्कर्ष की परिणति प्राप्त करता है।

मानव सभ्यता ने जब प्रकृति के सुरम्य क्रोड में नेत्रोन्मीलन किया तब प्रकृति ने अनेक प्रकार से उसे प्रभावित किया। बौद्धिक विकास के इस प्रथम सोपान पर प्रकृति के सुरम्य रूपों के प्रति मानव के मन में प्रशंसा का भाव जागा और वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ। प्रकृति के रौद्र रूपों ने उसे भय ग्रस्त कर दिया और उन्हें अपने से शक्तिशाली समझकर मनुष्य ने प्रसादनार्थ उनका पूजन आरम्भ कर दिया और देवता रूप में प्रतिष्ठित कर लिया। प्रकृति अद्भुत स्वरूपों ने अपनी भव्यता से अभिभूत करके उसके मन में अनेक प्रश्नों को जन्म दिया। जिज्ञासा से बुद्धि को प्रेरणा मिली और मनुष्य ने प्रकृति को निकट से देखना और परखना आरम्भ कर दिया। कौतूहल और भय की वस्तु मात्र न रहकर अब प्रकृति उसकी सहचरी बन गयी। तब उसके सुरम्य रूपों की उसने सराहना की और उसके भीषण रूपों को भी समझना चाहा। प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए चेष्टाशील मनुष्य ने अन्ततोगत्वा उस पर अधिकार करके उसे अपनी भौतिक उपलब्धियों का साधन भी बना लिया परन्तु भाव जगत में वह उसे अपनी सहचरी प्रतीत हुई। साहचर्य ने प्रकृति के साथ मनुष्य का तादात्म्य स्थापित कर लिया और किसी और को लेकर जगे हुए अपने भाव से साम्य या वैषम्य रखती हुई प्रकृति कभी रस-रास सहायिका एवं व्यथा विनोदन करने वाली प्रतीत हुई तो कभी अपने से निरपेक्ष स्वकीय रागरंग में डूबकर शत्रु प्रतीत हुई।

जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में अपना साथ देने वाली प्रकृति के साथ हृदय के जिस रागात्मक सम्बन्ध की अनुभूति मानव को हुई, कलात्मकता एवं कोमलता के साथ उसे दूसरों पर व्यक्त करने की इच्छा ने मनुष्य को कलाकार बना दिया। सभी कलाओं के आश्रय से कवि ने सहचरी प्रकृति की अभिव्यंजन किया परन्तु उसका सबसे अधिक यथा तथा स्वरूप चित्रण उसने काव्य कला में

किया। प्रकृति के जड़ और चेतन दोनों ही रूप कवि की विराट संवेदना का अंग बनकर सरस एवं सुन्दर प्रकृति कविता के रूप में ढल गये। यही कारण है कि विश्व साहित्य में प्रकृति वर्णन की अनिवार्यता स्वीकार की गयी है।

हमारे भारतीय साहित्य में आरम्भ से ही मानव के प्रकृति प्रेम की शतशः अभिव्यक्ति हुई। प्रकृति की निस्सीम सुषमा एवं रूप वैचित्य ने ऋषियों की काव्य प्रतिभा को प्रेरणा प्रदान की है। वैदिक साहित्य प्रकृति और साहित्य की अभिन्नता का ज्वलन्त उदाहरण है। वैदिक गीतात्मक काव्य में प्रकृति का उन्मुक्त वातावरण उपलब्ध है। वैदिक कवि ने चतुर्दिक विस्तीर्ण प्रकृति के सौन्दर्य को विमुग्ध एवं चमत्कृत दृष्टि से देखा है और आनन्द और कौतूहल से विभोर हुआ। ऊषा, सविता, वरूण, चन्द्र, मरूत् आदि प्रकृति तत्त्वों का प्रचुर मात्रा में वर्णन कर उसने वस्तुतः विस्तृत प्रकृति चेतना का स्तवन किया है। प्रकृति के क्षण प्रतिक्षण परिवर्तमान रूपों में उसे किसी व्यापक एवं नियामक सत्ता का मान हुआ है और प्रकृति के सौन्दर्य एवं चेतना में उसे अपने जीवन की अनुरूपता प्राप्त हुई है।

परवर्ती काल में भी कवियों के हृदय में प्रकृति के प्रति आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। महाकाव्य-काल में प्रकृति और साहित्य की अभिभाज्यता का एक अत्यन्त मार्मिक निदर्शन प्राप्त है। निर्मम व्याध के निष्ठुर शर से काम-मोहित क्रौंच-युग्म में से एक का वध और दूसरे का अपने मृत सहचर के प्रति क्रन्दन सुनकर आदि कवि वाल्मीकि का मानस करूणा से आन्दोलित हो उठा था और उनकी व्यथा ने छन्दोमयी वाणी के रूप में काव्य का सृजन कर डाला -

> मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
> यन्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।[1]

यह उदाहरण ही इस सत्य का प्रतिपादन करने के लिए पर्याप्त है कि प्रकृति मनुष्य के भाव-स्फोट का कारण बनती रही है और कवि की अन्तः प्रकृति पर बाहय प्रकृति जो प्रभाव डालती है उसी की सरस एवं संवेदनीय अभिव्यंजना काव्य है।

साहित्य - सृष्टि के मूल में रहने के साथ प्रकृति कवि की अभिव्यक्ति को सुन्दर बनाने में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका वहन करती है। प्रकृति के प्रति मानव के मन में जो सहज प्रेम है, उसके मूल में रंगरूप के प्रति आकर्षण जन्मजात रूप में विद्यमान रहता है। प्रकृति के विराट क्षेत्र में ईश्वर ने उसकी इस वासना की तृप्ति के अनेक साधन प्रदान किए हैं और उनसे मानव हृदय इतना चिर परिचित है कि साधारण मनुष्य प्रायः उस सौन्दर्य को कोई महत्त्व नहीं देता, परन्तु कवि अपनी प्रतिभा से प्रकृति-सौन्दर्य की वस्तु, क्रिया एवं भाव स्थितियों के आदर्श रूप चुनकर उनके माध्यम से किसी अन्य के सौन्दर्य को उद्भासित करता है उस समय साधारण व्यक्ति भी चमत्कृत हो उठता है। साहित्य सृष्टि के मूल में रहने वाली भावनाओं के परिष्कार में भी प्रकृति का योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति मनुष्य का जो सहज आकर्षण है उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण एवं उसके प्रति आश्रय के आह्लाद का निरूपण करके की जाती है किन्तु ऐसा आश्रय भाव शून्यता की स्थिति में ही सम्भव है। किसी अन्य को लेकर प्रभावित हुई आश्रय की मन:स्थिति को प्रकृति के नाना रूप किस प्रकार साम्य अथवा वैषम्य के आधार पर उद्दीप्त करते हैं मनुष्य की भावनाओं के उद्दीपन में प्रकृति का क्या योग हे, इसे भी कवि सम्यक् रूप से प्रदर्शित करता है। प्रकृति के साथ आत्मीय सम्बन्ध की अनुभूति मनुष्य करता रहता है। प्रकृति के (मानवीकृत) रूप को काव्य में स्थान देकर साहित्यकार उसकी भी विशद् व्याख्या कर डालता है। इस प्रसङ्ग में प्रसिद्ध है कि महाकवि कालिदास के द्वारा प्रकृति के मनोहर मानवीकरण की बराबरी आज तक कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। इतना ही नहीं साहित्य की प्रतिपाद्य रस-निष्पन्ति में प्रकृति की भूमिका की मीमांसा भी कवि कर देता है। प्रकृति सौन्दर्य पूर्ण निष्काम, नित्यनूतन एवं चिरन्तन है। इस सौन्दर्य का साक्षात्कार प्रायः हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेता है कि कुछ काल के लिए हम अपने आपको भूलकर उस सौन्दर्य की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं।

अन्तः सत्ता की यही तदाकार - परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है और इसी सौन्दर्य के धरातल पर कवि की अनुभूति, भावना और कल्पना द्वारा काव्य और प्रकृति का संगम होता है। बाह्य प्रकृति आत्मा को स्निग्ध शान्ति एवं समरसता प्रदान कर भेदभाव से अलग अभेद एवं एकत्व तक पहुंचाकर सच्ची रसानुभूति कराती है, यही साहित्य का चरम लक्ष्य है। इस प्रकार साहित्य - सर्जना में प्रकृति का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

साहित्य जगत में प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण प्राप्त होता है। आलम्बन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति स्वयं वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव प्रकृति के ऊपर उत्पन्न प्रभाव ही वर्ण्य विषय रहता है। रस के उपनिबन्धन कवि प्राकृतिक दृश्यों का उद्दीपन विभाव के रूप में आश्रय ग्रहण करता है। प्रकृति के विभिन्न रूप जैसे वन, उपवन, नदी, शैल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, बसन्त ऋतु कोकिल स्वर, मेघमाला आदि मानवीय भावों को उद्दीप्त करने वाले होते हैं। साहित्य में अवसर के अनुसार प्रकृति मंजुल एवं भयावह दोनों ही स्वरूपों का चित्रण प्राप्त होता है।

इस विवेच्य कृति 'बृ0क0 श्लो0 सं0' में प्रकृति प्रेम की स्पष्ट झलक अत्यन्त नजदीक से दिखायी पड़ती है। कवि ने इसमें प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों का अत्यन्त मनोहर चित्रण किया है। कहीं पर भयावह वन प्रदेश कहीं पर रमणीय एवं विचित्र सरोवर का वर्णन कहीं पर वन प्रदेश में स्थित आश्रमों का वर्णन अत्यन्त मनोहारी तरीके से किया है। जिनका विवेचन विचारणीय है।

प्रकृति का भयावह चित्रण :

प्रकृति के भयावह चित्रण का इस महाकाव्य में कतिपय स्थलों पर स्वाभावि वर्णन किया है - यथा - वन में चमक से अन्तहीन आकाश में नीलवर्ण के वायु देवता अचानक तेज बौछार के साथ बरसने लगे और तेज तूफान चलने लगा। तूफान इतना भयंकर था कि उसने राजा की प्रति कृतियों

के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, वे टुकड़े तूफान में अदृश्य हो गये।[1]

दूसरी तरफ वन मार्ग में कहीं-कहीं पर अत्यन्त भयावह वर्णन इस महाकाव्य में परिलक्षित होता है - यथा वन में एक वेणुपथ मार्ग था। जिसमें एक विशाल नदी थी जिसे पार करने के लिए एक स्थूल बांस का सहारा लेना पड़ता था। पार करते समय यदि यह बीच में टूट गया तो व्यक्ति नदी में गिरकर अपना शरीर त्याग कर मृत्यु को प्राप्त हो जाता था और तुरन्त पत्थर के रूप में परिवर्तित हो जाता था।[1]

भयावह वर्णन :

दूसरी तरफ इस महाकाव्य में अत्यन्त विस्मयकारी वर्णन दृष्टिगोचर होता है। जैसे यहां पर 'शिव तडाग' नामक सरोवर का वर्णन भी अत्यन्त भयावह एवं विस्मयकारी है। यह सरोवर अत्यन्त विचित्र भी था। इस सरोवर के तट पर विचित्र घटनायें कभी-कभी घटती थीं। यह सरोवर का तट बड़े-बड़े घड़ियालों से भरा हुआ था, जिसके डर से कोई भी व्यक्ति वहां जाने से डरता था। इसलिए रानी को सोते हुए ही पालकी में बैठाकर 'शिवतडाग' नामक सरोवर के तट पर ले गये और विशाल सरोवर में छोटी सी नौका से विचरण करने लगे। रानी सुरसमंजरी नदी से जगने पर इतने भयावह तट को देखकर अत्यन्त भयभीत हुई।[2]

---

1. वृ.का.श्लो.सं. अष्टादश सर्गः।
   एष वेणुपथो नाम महापथ विभीषणः ।
   कुशलैः कुशलेनाशु निर्विषादैश्च लड.घ्यते।।

2. प्रसुप्तामेव दयितामारोप्य शिविकां निशि ।
   तटं शिवतडागस्य चित्रवृतान्तमानयत् ।। 71 ।।
   ततस्तन्मकरार्ण पोतेनेव महार्णवम्
   प्लवेन व्यचरत्सार्ध नार्यया वीतनिद्रया ।। 72 ।।
   (वृ.का.श्लो.सं. तृतीय सर्गः)

3. तेषामेकस्तु मामाहभोगिनां भोगिनामियम् ।
   पुरी भोगवती नाम वसति कल्पजीविनाम् ।।
   तवयः कम्बलस्याहमयमश्वतरस्य तु।
   अन्ये च सुनवोऽन्येषां नागसेनामृतामिति ।।

अत्यन्त अद्‌भुत सरोवर था जो ऊपर से तो साधारण सरोवर की तरह ही था परन्तु नीचे नागसेना का राज्य था। जो सरोवर के तट को शान्त पाकर बाहर आकर स्नान क्रिया करते थे और अन्दर चले जाया करते थे। यह मनुष्य जाति के लिए विस्मय कर देने वाला सरोवर था।

विशाल वन में ही एक तरफ बड़े-बड़े सरोवर थे। पूरा वन चारों ओर पर्वतों से घिरा हुआ था जिसमें एक तरफ प्रपात झरने बहुत तेजी से नीचे गिर रहे थे। जिसका सौन्दर्य अत्यन्त रमणीय थे। उस बड़े वन में बहुत से फलों के भी वृक्ष थे जिनमें से कोई केला, कोई आम, कोई नारियल आदि फलों से लदे हुए थे। उसी वन में कहीं पर हिरण तीव्र गति से दौड़ रहे थे, कहीं पर हाथी मन्द गति से विचरण कर रहे थे।[2]

एक अन्य स्थान पर फलों से लदे हुए कटहल के वृक्ष की शाखायें इलायची, मिर्च, पान आदि की लताओं से उलझें हुए थे जो कि अन्य कहीं पर देखने को नहीं मिलते हैं। दूसरी तरफ समुद्र तट मौक्तिक और मूंगा से युक्त थे उसी तट पर नर-नारी राजहंस के जोड़े की तरह विचरण किया करते थे जहां लौंग कर्पूर सुपारी आदि आज मात्र दुकानों पर ही उपलब्ध होते हैं इन सबके वृक्ष देखने को ही नहीं मिलते वहीं पर इस विशाल वन में लौंग, कर्पूर, सुपारी, ताम्बूल (पान) चन्दन आदि दुर्लभ वस्तुओं के वृक्ष भी आसानी से देखने को मिलते थे।[3]

---

1. चन्दनागरूककर्पूर लवंग लवली वनैः।
   पत्राक्रान्ताः सरित्वन्तः शैलोपान्ताः समन्ततः ।। 257 ।।
2. कदली नारिकेलादिनफलिनद्रुमसंकटाः ।
   आरण्यैकैरराण्यान्योः भज्यन्ते पत्र कुंजरैः ।। 258 ।।
   (वृ.क.श्लो.सं. अष्टादश सर्गः)
3. पुलिनैः सिन्धुराजस्य मुक्ताविद्रुमसंकटैः ।
   राजहंसाविवोत्कण्ठौ प्रीतौ समचरावहि ।। 310 ।।
   (वृ.कथा.श्लो. सं. अष्टादश सर्गः)

इसी प्रकार वन में कहां पर वाल्मीक (चीटियों की बाँबियाँ) थे मार्ग में स्थाणु, कण्टक और झाड़ियों और संकुल के साथ शेर, हाथी और चीता आदि सभी पशुओं से भरे हुए थे।[1]

दो योजन चलने के पश्चात एक सांप की तरह छोटा परन्तु बहुत संकरा मार्ग था जिसके एक तरफ भयानक गहरी खाई थी, अन्धकार के कारण स्पष्ट दिखायी भी नहीं दे रहा था।[2]

विस्मयकारी वर्णन :

इसी प्रकार इस महाकाव्य में अनेक विस्मयकारी एवं अद्‌भुत वनों का वर्णन भी परिलक्षित होता है। एक और सरोवर अत्यन्त विचित्र था जो देखने मे ऊपर से शान्त सरोवर था परन्तु नीचे उसमें नागसेनापति का निवास गृह था, उस सरोवर में कभी-कभी सर्पो के जोड़े स्नान किया करते थे। मानव को देखते ही अन्दर चले जाते थे राजकुमार उदयन द्वारा विनम्रता पूर्वक निवेदन करने पर वे अपने नगर ले गये और उनमें से एक ने कहा कि इस शहर का नाम भोगवती हे, यहां प्रेमी सर्प युगल का निवास गृह है जो अपने वंश में जीवन चक्र के अन्त तक साथ रहते हुए जीवन का उपभोग करते है। मैं कम्बल पुत्र हूँ और यह अश्वतर हैं मैं इनका सेनापति हूँ और ये दूसरे पुत्र हैं।[3] इस प्रकार यह

---

1. गाहमानश्च वाल्मीकस्थाणु कण्टक संकटाम् ।
   अटवी लोहितायन्तीं प्राचीनमरूणशोचिषां ।।
   (वृ.क.श्लो. संग्रह षोडशसर्गः श्लो. सं0. 3)

2. वाहयित्वा च पन्थानं योजनद्वयसं प्रगे।
   भुजंगस्यातिसंक्षिप्तामद्राक्षं पदवीं ततः ।।
   तस्याश्चोभयतो भीममद्रष्टाम्तं रसातलम् ।
   अन्धान्धकारसंघातवित्रासिततमोनुदम् ।।
   (वृ.क.श्लो.सं. अष्टादशसर्गः 450, 451)

3. तेषामेकस्तु मामाहभोगिनां भोगिनामियम् ।
   पुरी भोगवती नाम वसति कल्पपजीविनाम् ।। ।29 ।।
   तनयः कम्बलस्याहमयमश्वतरस्य तु ।
   अन्ये च सूनवोऽन्येषां नागसेनाभृतामिति ।। ।30 ।।
   (वृ.क.श्लो.सं. पंचम वर्ग ।29, ।30 श्लोक)

प्रकृति का सायङ्.कालीन वर्णन :

इस महाकाव्य में सायंकालीन समय का बड़ा ही मनोरम और यथार्थ चित्रण यहां पर परिलक्षित होता है - यथा - जब सूर्य सायंकाल के समय में थक कर अस्ताचल अर्थात् पश्चिमी पर्वत की ओर चला जाता है उसी समय सभी पक्षी आपस में कलरव करते हुए पंक्तिबद्ध होकर आकाश मार्ग से अपने निवास वृक्षों की ओर जाते हैं।[1] और दूसरी तरफ सभी पशु भी चारागाह से झुण्ड में एकत्रित होकर आपस में शोर करते हुए अपने घरों की ओर जाते हैं। सभी मनुष्य भी दिन भर रम से थककर अपने घरों की ओर लौट रहे हैं।[2]

काव्य में प्रकृति चित्रण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि ये प्रकृति चित्रण प्राकृतिक सत्यों के अनुरूप ही हो, परन्तु कवि इन नियमों का पालन करने के लिए सर्वदा बाध्य नहीं होता। कभी-कभी कवि-गण प्रकृति विषयक ऐसी मान्यतायें स्थापित कर लेते हैं जो देश और काल के विचार से सत्य नहीं हुआ करती है, किन्तु फिर भी उनका प्रयोग काव्य में किया जाता है। विभिन्न वृक्षों के पुष्पित होने का कारण सुन्दरियों की विविध चेष्टाओं को माना गया है। प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों में से उद्यान वर्णन इस प्रकार मिलता है।

---

1. अथ गच्छति स्म रविरस्तभूधरं
   वसति द्रुमनभि शकुन्तपङ्.क्तयः ।
   मद मन्दमात्मभवनानि नागराः
   प्रियया सहामपि तन्निवेशनम् ।।
   (वृ.का.श्लो.सं. अष्टादश सर्गः श्लोक सं0 92)

2. कदाचिदथ वेलायां मन्दरश्मौदिवाकृति ।
   क्षुमितानमिवाश्रौषीत्स निर्घोषमुन्दवताम् ।।
   (वृ.का.श्लो.सं. अष्टादश सर्गः श्लाक सं0 ।।0)

राजमहल के उद्यान अत्यन्त रमणीय थे। उद्यान में कदम्ब वृक्ष, कुटज पुष्पों के वृक्ष और अर्जुन पुष्पों के वृक्ष थे जिसमें से मधुर सुगन्ध आती थी। सम्पूर्ण उद्यान मोर, मुर्गे, मनोरम मयूर और सारंग पक्षी और अन्य विभिन्न प्रकार के पक्षियों के समूह और मेढ़कों के कोलाहल से परिपूर्ण था। इसी उद्यान में रानी मयूर सारंग पक्षियों के साथ क्रीड़ा किया करती थी। उद्यान में वृक्ष फलों से लदे हुए थे और नीली चमेली के पुष्पों पर मधुमक्खियाँ मंडराया करती थी। पुष्प कुजों का विशाल समूह था।[1]

इस प्रकार अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विवेच्यकृति में प्रकृति के प्रत्येक अवयवों का सांगोपांग चित्रण किया गया है। कहीं पर प्रकृति का भयावह चित्रण कहीं पर प्रकृति का विस्मयकारी वर्णन तो कहीं पर अद्भुत सरोवरों का तथा कहीं पर प्रकृति का सायङ्.कालीन समय का वर्णन अत्यन्त मनोहारी किया गया है।

---

1. कदाचिदागते काले समृद्ध कुतजार्जुने।
रसन्मयुरसारंगमेघमण्डूकमण्डले ।।
मनोरमंगृहोद्यानं प्रविवेश मनोरमा ।
कदम्बानिलमाघ्रातुमुद्भूत प्रथमार्तवा ।।
(वृ.क.श्लो.सं. अष्टादश सर्गः श्लोक सं0 181, 182)

दशम अध्याय

साहित्यालोचन की आधुनिक अवधारणाओं के आलोक में रचना का परीक्षण

साहित्यालोचन की आधुनिक अवधारणाओं के आलोक में रचना का परीक्षण

मनुष्य स्वभाव से संवेदनशील और जिज्ञासु होता है। सृष्टि के आरम्भ में जब उसने अपने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा तो प्रकृति और मानव परस्पर सम्बन्धों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा उद्‌भूत हुई। रहस्य दर्शन से हर्ष और विस्मय के भाव जागे तथा उन भावों की अभिव्यक्ति के लिए उसने संगीत और काव्य का सहारा लिया। कालान्तर में उसमें विश्लेषण की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई।

पाश्चात्य समीक्षा का मूल यूनान में माना जाता है और प्लेटों प्रथम उल्लेखनीय पाश्चात्य समीक्षक माने जाते हैं। उन्होंने प्रत्येक ज्ञान और व्यवहार को सामाजिक उपयोगिता की कसौटी पर रखा। साहित्य की परख भी उन्होंने इसी दृष्टिकोण से की है। अपने युग के साहित्य पर तीन आक्षेप लगाये - 1. साहित्य अज्ञान-जन्य होता है 2. साहित्य सत्य से दूर होता है 3. साहित्य क्षुद्र मानवीय वासनाओं से उत्पन्न होता है और क्षुद्र वासनाओं को उभारता है, अतः वह हानिकर होता है। इस प्रकार काव्य की हीन दृष्टि से देखते थे। आदर्शवाद : यथार्थवाद आदि वास्तविक चित्रण हमारे साहित्य जगत में विद्यमान है।[1]

पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता का आदि स्रोत यूनान रहा है और वह यूनान के दार्शनिकों, विचारकों एवं काव्य चिन्तकों की शब्दावली में सुनाई देती है। प्लेटों के साहित्यिक विचार उनके दार्शनिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रभावित है।

---

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त - डा0 गणपति चन्द्र गुप्त - पेज नं0 170

प्लेटों का आदर्शवाद

दर्शन का चरम लक्ष्य सत्य या अन्तिम सत्य की खोज करना होता है, परन्तु इस सम्बन्ध में भी मुख्यतः दो वर्ग रहे हैं - एक, जो किसी सूक्ष्म सत्ता के या परोक्ष शक्ति को - जिसे परमात्मा का भी नाम दिया जाता है - अन्तिम सत्य या शाश्वत तत्त्व मानते हैं, इन्हें आदर्श। दूसरेजोइस स्थूल एवं भौतिक जगत को ही सृष्टि का आधार भूत तत्त्व एवं सत्य मानते हैं, इन्हें अर्थात दूसरे वर्ग के लोगों को यथार्थवादी कहा जाता है। प्लेटों आदर्शवादी विचारधारा में आते हैं। वे मानते थे कि इस भौतिक जगत के पीछे किसी सूक्ष्म, शाश्वत एवं अलौकिक जगत् का आधार है या यों कहिए कि यह जगत और इसके पदार्थ मिथ्या है, जबकि उसका वास्तविक निर्माण किसी अलौकिक शक्ति या परमात्मा के विचारों के अनुसार हुआ - अतः विचार ही मूल तत्त्व है जबकि वस्तु मिथ्या है। प्लेटों के अनुसार इस संसार में जितनी भी वस्तुयें है, वे सभी विचार रूप में अलौकिक जगत में विद्यमान है। सांसारिक पदार्थ अपूर्ण परिवर्तनशील और नाशवान है अतः वे मिथ्या है जबकि अलौकिक जगत में विद्यमान उनका विचार या प्रत्यय अपरिवर्तनीय एवं शास्वत होने के कारण ही प्लेटों के विचारों को तत्त्ववाद या आदर्शवाद कहा जाता है।[1]

अंग्रेजी का 'आइडियालिज्म' (Idealism) आदर्शवाद शब्द भी 'आइडिया' (Idea) विचार शब्द से बना है - जो इस तथ्य का सूचक है कि यह वाद पदार्थों की अपेक्षा विचारों को अधिक महत्त्व देता है। यही 'आदर्शवाद' आध्यात्मिक विचारों नैतिक सिद्धान्तों एवं उच्च कोटि के मानव मूल्यों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

---

1. भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का इतिहास - पेज नं0 171

यथार्थवाद

प्रथम विश्वयुद्ध ने एक ओर अव्यवस्था और अराजकता को जन्म दिया, दूसरी ओर विवेक शून्यता और नकारात्मक प्रवृत्ति को। कला के क्षेत्र की इस नकारात्मक प्रवृत्ति, नास्तिकतावाद को दादावाद कहा गया। इसकी स्थापना विभिन्न देशों के निर्वासित युवकों ने स्विटजरलैण्ड में की। यही दादावाद तर्कसंगत लेखन और अभिव्यंजना के विरूद्ध था। इसी दादावाद ने फ्रांस में यथार्थवाद को जन्म दिया।

'यथार्थवाद' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - जो वस्तु जैसी हो, उसे उसी अर्थ में ग्रहण करना। दर्शन, मनोविज्ञान सौन्दर्यशास्त्र, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में वह विशेष दृष्टिकोण जो सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल को, काल्पनिक की अपेक्षा वास्तविक को, भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को, सुन्दर के स्थान पर कुरूप को, आदर्श के स्थान पर यथार्थ को ग्रहण करता है - यथार्थवादी दृष्टिकोण कहलाता है।[1]

यथार्थवाद की एक दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है। दर्शन के क्षेत्र में जहां एक आदर्शवादी अप्रत्यक्ष सत्ता, अलौकिक शक्ति, सूक्ष्म जगत और मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व का विकास करता है वहां यथार्थवादी स्थूल, भौतिक एवं प्रत्यक्ष जगत में ही जीवन की इति श्री मानता है।[2]

यथार्थवाद की परिभाषा निम्न प्रकार से की गयी है - "एक विशुद्ध आत्मिक स्वतः क्रिया जिसके द्वारा विचारों के वास्तविक क्रम को

---

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त, डा. गणपति चन्द्र गुप्त, पेज 240
2. तदैव, पेज 24।

मौखिक, लिखित या अन्य किसी रूप में प्रकट किया जाता है।"[1] साहित्य में प्रकृतवाद की चरम अभिव्यक्ति ही 'यथार्थवाद' है। जब समाज की मर्यादा और परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण कर अत्यन्त नग्न रूप धारण करने लगा तो उसे 'यथार्थवाद' कहा गया।[2]

'यथार्थवाद' कलात्मक अभिव्यक्ति की सभी मान्य परम्पराओं को अस्वीकार करता है। उसका लक्ष्य है मानसिक जीवन का उद्घाटन करना जो अचेतन कके धूमिल गह्वर में डूबा हुआ है। यथार्थवाद किसी बहिर्गत प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं करता है वह पूर्व स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान करता है।

हर्बट रीड कहता है - "यथार्थवादी के हृदय में उस नैतिकता के लिए कोई सम्मान का भाव नहीं हो सकता, जो एक ओर घोर गरीबी और दूसरी ओर बेहद अमीरी को पोषण दे जो भूखे अथवा अधभूखे इन्सानों के होते हुए भी धरती की उपज को उजाड़ दे, जो एक ओर सार्वभौम शान्ति का सन्देह प्रचारित करे और दूसरी ओर आक्रामक युद्ध की विभीषिका उपस्थित करे, वह नैतिकता जो कामवासना को इतना विकृत कर देती है कि सहस्त्रों स्त्रीपुरूष पागल बन जाते हैं, वह नैतिकता जिसके कारण असंख्य व्यक्ति दुःख का भार उठाये फिरते हैं अथवा छल प्रमंच से अपना मस्तिष्क विकृत कर लेते हैं।"[3]

---

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, डा0 शान्ति स्वरूप गुप्त पेज नं0 217
2. तदैव
3. तदैव

साहित्य के क्षेत्र में दोनों दृष्टिकोणों का विकास हुआ है। जहां आदर्शवादी व्यक्तियों के क्रिया कलापों एवं उच्च भावनाओं का चित्रण आदर्श शैली में करता है, वहां यथार्थवादी मानव जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का चित्रण सहज स्वाभाविक माध्यम में प्रस्तुत करता है। अब प्रश्न है कि साहित्य की साहित्यिक्ता किस पर निर्भर है - आदर्शवाद अथवा यथार्थवाद पर। "साहित्य के मूल तत्त्व चार माने गये हैं - भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। इनमें से भाव और कल्पना का सम्बन्ध आदर्श से है, और बुद्धि और शैली का सम्बन्ध यथार्थवाद से है।[1]

काव्य जगत में दोनों का उचित समन्वय हो - यह भी एक आदर्श है, परन्तु यथार्थ है कि ऐसा हो नहीं पाता। कवि को निजी दृष्टिकोण और परिस्थितियों के प्रभाव से किसी एक ओर झुक जाना पड़ता है। यद्यपि थोड़ी बहुत आदर्शवादिता और यथार्थवादिता का चित्रण प्रत्येक काव्य जगत में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु उसमें प्रमुखता किसी एक की ही रहती है।

संस्कृत साहित्य में यथार्थवाद

सर्वसाधारण की धारणा है कि प्राचीन भारतीय जीवन में साहित्य में आदर्शोन्मुखता की प्रधानता रही है परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। जहाँ रामायण युगीन समाज में हम आदर्श के लिए यथार्थ की बलि होते देखते हैं, वहाँ भारतीय जीवन में यथार्थ की पूर्ति के निमित्त आदर्शों का पतन दृष्टिगोचर होता है। समाज की मर्यादायें क्या है - आदर्श क्या है - इन प्रश्नों का उत्तर महाभारतीय नेताओं ने यथार्थवादी ढंग से किया है। युधिष्ठिर

---

1. भारतीय एवं पाश्चात काव्य सिद्धान्त, डा0 गणपति चन्द्र गुप्त पेज नं 24।

ने तो एक स्थान पर स्वीकार किया है कि समाज की मर्यादायें एवं नियम देश-काल सापेक्ष हैं, अतः उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। महाभारत की अनेक घटनाओं में भी हम आदर्शवादिता के विरूद्ध कूटनीति व कपट कौशल का प्रयोग परिलक्षित होता है। महाभारत परवर्ती युग में भी इस यथार्थवादी दृष्टिकोण का पर्याप्त विकास हुआ था, जिसका प्रमाण कौटिल्य का अर्थशास्त्र और वात्सायन का 'कामसूत्र' में मिलता है।

नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि ने नाटक की नायिकाओं की सूची में परकीया को भी स्थान दिया है। महाकवि कालिदास के दृष्टिकोण में हमें स्थान-स्थान पर यथार्थवादिता का परिचय मिलता है। जैसे 'मेधदूत' में वे एक ओर पत्नी वियुक्त अपराधी के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर वे मानव दुर्बलताओं को स्वीकार करते हुए पूछते है - कौन है जो विवृत्त जघनाओं के स्वाद से परिचित होकर उन्हें ठुकरा सके? उन्होंने 'कुमारसम्भव' में शिव-पार्वती के प्रथम समागम का वर्णन यथार्थानुमोदित शैली में किया है। इसी प्रकार शूद्रक में 'मृच्छटिक' में एक वेश्या पुत्री को नायिका का पद देकर तथा चोर जुआड़ियों के जीवन चित्रण करके अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया। संस्कृत साहित्य के नाटकों में भी यथार्थवादिता का आग्रह इतना अधिक है, उन्होंने निम्न वर्ग के पात्रों के सम्भाषण में प्राकृत भाषा तक का प्रयोग किया है।

साहित्य में संस्कृत के स्थान पर जब प्राकृत की प्रतिष्ठा हुई तो यथार्थवादी प्रकृति का और अधिक विकास हुआ। हाल की 'गाथासप्तशती' विशुद्ध यथार्थवादी दृष्टिकोण से रचित है। प्रेम की विभिन्न परिस्थितियों का निरूपण 'गाथासप्तशती' में अत्यन्त स्वाभाविक शैली में हुआ है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण से :

इसी प्रकाकर विवेच्य कृति 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह में कथाओं तथा उपकथाओं के माध्यम से समाज के प्रत्येक पक्ष का यथार्थवादी चित्रण किया है। इस महाकाव्य में कवि एक तरफ समाज के 'धनी उच्च वर्ग का चित्रण किया है तो दूसरी ओर निर्धन वर्ग का स्वाभाविक चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। कहीं पर वन के निवासियों की स्थिति तथा उनके समाज की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। जैसा कि समाज के निर्धन वर्ग के दृष्टि के सम्बन्ध में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है - सानुदास अपनी विलासिता प्रवृत्ति के कारण एक वेश्या द्वारा धन सम्पत्ति हरण कर लिए जाने पर अत्यन्त निर्धन हो जाते है। उनकी माता पत्नी सभी अत्यन्त दरिद्रता की अवस्था में आ जाते हैं। सानुदास धन प्राप्ति के लिए जाता है जब लौटकर आता है तो अपनी पत्नी को दरिद्रता की प्रतिमूर्ति के समान देखता है और अपनी माता को तो पहचान ही नहीं पाता।

आदर्शवादी दृष्टिकोण से :

आदर्शवाद एक पाश्चात्य अवधारणा है। भारतीय साहित्य जगत में आदर्श तो विद्यमान है परन्तु वाद के रूप में विवेचन नहीं है। यह विवेच्य कृति आदर्शवादी दृष्टिकोण से भी विचारणीय है। इस महाकाव्य के पात्रों में आदर्श तो है परन्तु वह किसी वाद के रूप में नहीं है, क्योंकि किसी वाद रूपी विचारधारा का प्रचलन नहीं था। आदर्श एक सिद्धान्त के रूप में था जिसमें पात्रों को अपना एक आदर्श होता था जिसका वे सम्पूर्ण जीवन में पालन करते थे।

भौतिकवादी दृष्टिकोण से :

यह विवेच्य कृति भौतिकवादी दृष्टिकोण से अत्यन्त विचारणीय है। 'इस समय सभी आंशिक रूप से भौतिकवाद में लिप्त थे। मनोरंजन

के लिए महोत्सव का आयोजन किया जाता था, प्रजा उसमें पूर्ण उत्साह से हिस्सा लेती थी। राजा भी अपने मित्रों के साथ हिस्सा लेते थे।

इस प्रकार महाकाव्य का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि उस समय न तो अति यथार्थवाद था न अति आदर्शवाद और न ही अति भौतिकवादी था। सभी पक्षों का कहीं-कहीं पर वर्णन परिलक्षित होता है।

एकादश अध्याय

संस्कृत साहित्य पर प्रभाव
एवं
संस्कृत साहित्य में स्थान

बृहत्कथा का साहित्य पर प्रभाव एवं संस्कृत साहित्य में स्थान

संस्कृत-साहित्य के कवि गुणाढ्य की रचना ' बृहत्कथा' से अपनी कथाओं की रूपरेखा ग्रहण करते थे। इस विषय में सन्देहहीन साक्ष्य उपस्थित है। दशम शती के अन्त में वर्तमान धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में (1/ 68) नाटकों में उपजीव्य ग्रंथों के लिये रामायण के अनंतर 'बृहत्कथा' का नाम्ना निर्देश किया गया है[1] जिसकी टीका मैं धनिक ने मुद्राराक्षस नाटक को बृहत्कथा- मूलक बताया गया है तथा इस प्रसङ्ग में उस ग्रन्थ से दो पद्यों को भी उद्धृत किया गया है। संस्कृत नाटककार तथा गद्यकार अपनी रचनाओं के लिये 'बृहत्कथा' का आश्रय लिया करते थे जिसमें मदनमञ्जुका का चित्र स्पष्टतया निश्चित था। वह एक ऐसी वेश्या थी जो अपनी स्थिति से असन्तुष्ट थी, कुल स्त्री बनने की इच्छुक थी और इसीलिये विध्यनुसार विवाह की कामना करती थी । शूद्रक ने 'दरिद्रचारूदन्त' में वसन्तसेना का चित्रण मदनमञ्जुका के आर्दश पर किया गया था। इसका यदि यर्थाथतः निर्णय हो जाय तो मूलग्रन्थ 'बृहत्कथा' के समय निरूपण का एक निश्चित प्रमाण उपलब्ध हो सकता है। परन्तु इतना तो उल्लेखनीय है कि मृच्छकटिक में दिया हुआ वसन्तसेना के प्रासाद के उद्यान और आठ प्रकोष्ठों का वर्णन - बुधस्वामी द्वारा - बृहत्कथाश्लोक संग्रह' में दिये गये कलिंगसेना के गृह के वर्णन के साथ छोटी-छोटी बातों में भी मिलता-जुलता है। भास अपने' अविमारक' रूपक की कथावस्तु के लिये भी गुणाढ्य के ऋणी प्रतीत होते हैं। श्री हर्ष ने अपने प्रख्यात् नाटक "नागानन्द" की कथावस्तु को बृहत्कथा से निश्चयेन लिया था, इसका प्रमाण बृहत्कथामञ्जरी तथा कथासरित्सागर दोनों में जीमूतवाहन की कथा की उपस्थिति है।

"बृहत्कथा" का प्रभाव संस्कृत के गद्यकाव्य पर भी पड़ा है। गुणाढ्य का प्रभाव दण्डी पर भी सविशेष दिखलाई पड़ता है।

---

1 इत्याद्यशेषमिह वस्तुविभेदजातं, रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च।
आसूत्रये तदनु नेतृरसानुगुण्यात्, चित्रां कथामुचित चारूवयः प्रपञ्चैः।।
(दशरूपक 1/ 68)

दण्डी ने 'दशकुमार चरित' में ऐसे राजकुमारों का विचित्र- चित्रण किया है जो दुर्भाग्यवश आवारा लोगों के बीच पड़ जाते है और नाना प्रकार का क्लेश सहनकर साहसी अनुभवों के भीतर से गुजरते है। अन्त में एक स्थान पर जुटकर अपना अनुभव सुनाते हैं। कथा का यह ढांचा और प्रकार बृहत्कथा के आधारपर है जहाँ वियोग के पश्चात् पुनः एकत्रित नरवाहनदत्त और उसके मित्रगण अपनी आप बीती सुनाते हैं।

दण्डी बृहत्कथा से पूर्ण परिचित थे। तभी तो उसकी प्रशंसा में लिखा है- 'भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्" दशकुमार चरित की चमत्कारपूर्ण कहानियां बृहत्कथा की देन है। बाणभट्ट अपनी कादम्बरी के कथानक के लिये भी अन्ततः बृहत्कथा के ऋणी माने जाते है। यद्यपि यह पूर्णतः निर्णित नहीं हुआ है।

जिस प्रकार आधुनिक समय में पञ्चतन्त्र में अनेक कथाओं के माध्यम से हितकारी उपदेशों का रोचक वर्णन किया है उसी प्रकार इस महाकाव्य में भी अनेक स्थलों पर मार्ग में आने वाली दुघर्टनाओं का वर्णन उपकथाओं के माध्यम से किया है तथा कहीं–कहीं पर अनेक उपकथाओं के माध्यम से हितकारी उपदेशों का वर्णन किया है।

इस महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक न होकर कविकल्पित है। नीति परक् कथाओं के माध्यम से व्यवहारविदे प्रयोजन की पूर्ति होती है। यह महाकाव्य काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कराने में लोकप्रिय है। "साहित्य समाज का दर्पण है" इस कथन को पूर्णतया चरितार्थ करते हुये कवि ने तत्कालीन समाज का यर्थाथ चित्रण किया है। इस महाकाव्य में गुणाढ्य कृत मूलग्रन्थ वृहत्कथा के आधार पर उपकथाओं को परिवर्तित किया है। यह समाज के लिये उपयोगी साहित्य है।

प्रशंसा- 'बृह0 क0 श्लो0 सं0' के रचयिता बुधस्वामी अपनी कला के लिये निःसदेह प्रशंसा योग्य है। वे गुणाढ्य के ऋणी है, ऐसा मानने पर जीवन के प्रति उल्लासपूर्ण दृष्टि उनके प्रेममय वातावरण और तीव्रता से परिवर्तनशील उन दृश्यों में नानारूपीय प्रदर्शन जिसका वे पात्र भाग्य अथवा अपने ही कृत्यों के कारण अनुभव करते है।[1]

---

[1] सं. सा0 का इतिहास पेज नं0 145 ए0बी0 कीथ

निष्कर्ष स्वरूप एक ओर ''बृहत्कथा'' के आधार पर लिखे गये ग्रन्थों में ''बृहत्कथा श्लोक संग्रह'' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसने परवर्ती 'बृहत्कथामञ्जरी' के लेखक को भी उपकथाओं में परिवर्तन करके नवीनता स्थापित करने की अपनी परम्परा को ग्रहण करने की प्रेरणा दी। दूसरी ओर परवर्ती रचनाकार शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिक' नाटक जैसे ग्रन्थों पर हमारे विवेच्य महाकाव्य 'बृहत्कथाश्लोक संग्रह' पर दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक प्रमुख महाकाव्य की दृष्टि से, प्राचीनकथा को नवीन रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से अपनी प्रभावोत्पादक वर्णन शैली के द्वारा परवर्ती रचनाकारों को साक्षात् प्रभावित करने की दृष्टि से एवं भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में जीवन के विविध क्षेत्र में स्थापित मूल्यों एवं परम्पराओं का निर्वाह करते हुये ही साहसपूर्ण और विचित्र अनुभवों का आकर्षण किम्वा सौन्दर्य को रेखाङ्कित करने की दृष्टि से आलोच्य 'बृहत्कथाश्लोक संग्रह' ग्रन्थ संस्कृतसाहित्य में एक महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट स्थान रखता है।

शब्द संकेत सूची

वृ0 क0 श्लो0 सं0	बृहत्कथाश्लोक संग्रह
कथा0 सरि0	कथा सरित्सागर
सं0 सा0 का0 इति0	संस्कृत साहित्य का इतिहास
वृ0 क0 म0	बृहत्कथामञ्जरी
वा0 रा0	वाल्मीकि रामायण
सा0 दर्प0	साहित्यदर्पण
का0 हि0 वि0 वि0	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

5

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्रम संख्या	ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/टीकाकार /समीक्षक	सन्
1.	संस्कृत साहित्य का इतिहास प्रकाशन- शारदा संस्थान मन्दिर	बलदेव उपाध्याय	1973
2.	संस्कृत साहित्य का इतिहास सुन्दर लाल जैन-मोतीलाल बनारसीदास	ए0बी0कीथ	1960
3.	संस्कृत साहित्य का इतिहास राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर	डा0 प्रीति गोयल, प्रो0 जोधपुर यूनिवर्सिटी	1987
4.	संस्कृत साहित्य का इतिहास चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	वाचस्पति गैरोला	1978
5.	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा साहित्य निकेतन, कानपुर	पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय	1970
6.	संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास विनोद पुस्तक मन्दिर,, आगरा	डॉ0 राजकिशोर सिंह	1978
7.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 मंगल देव शास्त्री, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	
8.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास साहित्य भंडार,, मेरठ	डॉ0 सत्यनारायण द्विवेदी	

9.	संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास हिन्दी ग्रन्थ अकादमी	जितेन्द्र चन्द्र शास्त्री	1975
10.	ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर रामनारायन लाल प्रकाशन	डॉ0 वी वर्दाचारी	1960
11.	संस्कृत साहित्य का इतिहास प्राप्तिस्थान- मेहर चन्द्र लक्ष्मणदास	डॉ0 हंसराज अग्रवाल	1947
12.	संस्कृत साहित्य का वाङ्मय इतिहास वा0ह0 पटवर्धन	डॉ0 सूर्यकान्त	
13.	ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर अंक प्रथम मोतीलाल बनारसीदास	एम0 विन्टरनिट्ज	
14.	हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर मोतीलाल बनारसीदास, बनारस	के0 कृष्णमाचारी	1970
15.	कथा सरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति शोध–प्रबन्ध	डॉ0 एस0एन0 प्रसाद	
16.	दशरूपक-धनञ्जयकृत	डॉ0 श्री निवासशास्त्री	1969 ई.
17.	त्रिविक्रमभट्ट कृत नलचम्पू	डॉ0 अखिलेश पाठक	
18.	बाण कृत- हर्षचरित		
19.	सिद्धान्तकौमुदी प्रकाशन- क्षेमराज कृष्णदासश्रेष्ठी, मुम्बई	टीकाकार- शिवदत्तशर्मा	1998
20.	वृत्तरत्नाकर	टीका– श्रीधरानन्दशास्त्री	1978

मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

21. छन्दोमञ्जरी — टीका– प्रो0 राजेन्द्र मिश्र — 1998

22. साहित्यदर्पण — टीका– शालिगरामशास्त्री
मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

23. रीतिकाव्यों की भूमिका — डॉ0 नागेन्द्र — 1949
गौतम बुक प्रकाशन, नई दिल्ली

24. दशरूपक — टीका– भोलाशंकर व्यास

25. कुन्तक का वक्रोक्ति जीवितम् प्रकाशन — डॉ0 नगेन्द्र — 1955
आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

26. उद्भट्ट- काव्यालङ्कार — डॉ0 नगेन्द्र

27. वामन काव्यालङ्कार

28. रूद्रटकृत- काव्यालङ्कार वासुदेव प्रकाशन दिल्ली — डॉ0 सत्यदेव चौधरी — 1965

29. काव्यालङ्कार सारसंग्रह चौखम्बा प्रकाशन, बनारस — राममूर्ति त्रिपाठी

30. शारदातनय का भावप्रकाशन, बडौदा — गायकवाड ओ0सं0सी0, — 1960

31. धनञ्जय कृत दशरूपक दशरूपक चौखम्बा प्रकाशन, बनारस — श्रीनिवासशास्त्री — 1965

32. काव्यप्रकाश साहित्य भण्डार प्रेस, मेरठ — आचार्य विश्वेश्वरनाथ — 1985

33. काव्यानुशासन- निर्णयसागर प्रेस बम्बई

34.	नाट्यशास्त्र- प्रथम भाग भूमिका साहित्य अकादमी समिति		
35.	नाट्यशास्त्र द्वितीय भाग		
36.	सुबन्धु– वासवदत्ता वाणी–विलास मंत्रालय	व्याख्याकार– आर0वी0 कृष्णामाचारी	
37.	ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी		
38.	रस मीमांसा	ब्रह्मानन्द शर्मा	1986
39.	काव्यप्रकाश, साहित्यभण्डार प्रेस, मेरठ	श्रीनिवासशास्त्री	
40.	संगीत चिन्तामणि- प्रका0 संगीत कार्यालय, हाथरस	आचार्य वृहस्पति	
41.	संगीत शास्त्र- हिन्दी समिति	के0 वासुदेवशास्त्री	1960
42.	भारतीय संगीत का इतिहास प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज		
43.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त	1997
44.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली	डॉ0 शान्तीस्वरूप गुप्त	1997